राजद समाचार

समानता, भाईचारा और आजादी

अंक - 12 मासिक जुलाई, 2022 सहयोग राशि - 20 रुपये

इस बार

बजट कहां खर्च हुआ, सरकार को नहीं मालूम : अनिल जैन 02

मिले कपूरी जी को भारत रत्न तेजस्वी यादव 03

पाठकीय अभिमत अग्निपथ पर : योगेंद्र यादव 05

राजीव नगर घटना पर : शरद कुमार/श्रीनाथ 07

महाराष्ट्र में सत्ता पलटः अरविंद 09

राष्ट्रपति चुनाव परः गोल्डी एम जॉर्ज 10

जाति जनगणना की जरूरतः मस्तराम कपूर 11

फुले और किसान समस्याः सुरेश कुमार 13

अब्दुल कय्युम अंसारीः अफरोज अहमद साहिल 14

गोदान परः सिद्धार्थ रामू 17

गांधी सावरकर पर : अरुण कुमार त्रिपाठी 18

विरासत में : गेल ओम्वेट 20

कवि का पन्ना : शांति यादव 22

लालू प्रसाद के जन्मदिन पर 24

सम्पादकीय

आज देश का हर नागरिक खुद को एक अजीब पेसोपेश में जकड़ा हुआ महसूस कर रहा है। उनके पास ठहरा वर्तमान है और खौफजदा भविष्यहीनता की खाई। न किसान सुरक्षित हैं न बेरोजगार। अल्पसंख्यक, महिलाएं, दलित और आदिवासी का हाल और भी बुरा है। पिछड़ा और अभिजन तबका भी बेतरह परेशान है। महंगाई, बेराजगारी, विस्थापन और संत्रास इनके जीवन की नियति बन गई है। सत्ता की राजनीति ने इनका इस हद तक विरूपीकरण कर दिया है कि ये शायद ही उससे उबर पायें। भारत की संसदीय यात्रा का यह एक ऐसा दुखद, त्रासदीपूर्ण और विडम्बनापूर्ण दौर है जहां अच्छे और बुरे की नैतिक सीमा रेखा मिटा दी गई है। हमने आजादी के लम्बे संघर्षपूर्ण दौर में जो कुछ भी हासिल किया था, 75 वर्षों के इस पड़ाव पर वह सब दांव पर लगा है। अपने अतीत की जिन उपलब्धियों पर हमें नाज था, उनपर शर्म करने का पाठ पढ़ाया जा रहा है। सरकार विभाजनकारी कार्यों में लगे लोगों को आजादी के अमृत महोत्सव के नाम पर गौरवान्वित करवा रही है। गांधी, नेहरू जैसे राष्ट्र निमार्ता खलनायक सिद्ध किये जा रहे हैं और सावरकर, गोडसे जैसे विभाजनकारी कार्यों में लगे तत्व महिमामंडित किये जा रहे हैं। भारतीय लोकतंत्र ने अपनी यात्रा में कई विषम दौर देखे हैं, लेकिन ऐसा अघोषित, डरावना और भयवाह दौर इसके पहले कभी नहीं आया।

देश समाज आज बड़ी जटिल चुनौतियों से घिरा है। सत्तारूढ़ भाजपा के निशाने पर पहले कांग्रेस थी। कांग्रेस के सफाये के बाद क्षेत्रीय पार्टियों पर उनकी नजर है। बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल, ओड़िशा में घुसपैठ, उनके स्वतंत्र वर्चस्व की वानगियां भर हैं। इन प्रांतों में जब वे पूर्ण बहुमत में होंगे तो शायद ही कुछ शेष बच पाये। उनका राजनीतिक वर्चस्व जितना दमनकारी, फासिस्ट और द्वेषपूर्ण है उससे कम खतरनाक नहीं है उनका सांस्कृतिक हिन्दुत्ववाद का एजेंडा। प्रतीक की राजनीति के नामपर भाजपा ने आदिवासी और दलित समाज के हितों का जितना अहित किया है उनसे पहले शायद ही किया गया हो। रामनाथ कोविद और अब द्रौपदी मुर्मू को राष्ट्रपति बनाने के पीछे का उनका इरादा यह कतई नहीं माना जाए कि वे दलित आदिवासियों के हितचिंतक हैं। इन वर्षों में इन समुदायों पर हिन्दुत्व ने जितने संगठित कहर ढाये हैं वह जगजाहिर है। सच तो यह है कि आर.एस.एस और उनके आनुषंगिक संगठन आदिवासी इलाके में उनकी मूल सरना पहचान को ही खत्म कर उन्हें हिन्दू बनाने में लगे हैं। देश की जो अलग-अलग अस्मिताएं हैं उसको वे हिन्दुत्व में नाभिनाल करने के षड्यंत्र में अपादमस्तक लीन रहे हैं। तमिल पहचान हो या बांग्ला या सरना पहचान- इन सबको वे हिन्दुत्व के रंग में रंगना चाहते हैं। उनके इस विस्तार में जो आड़े आये उन्हें या तो गौरी लंकेश और नरेंद्र दाभोलकर की तरह सरेआम हत्या कर दी गई या फिर बर्बर राव, हनी बाबू, आनंद तेलतुम्बड़े और गौतम नवलखा की तरह सलाखों में डाल दिया गया। रविकांत चंदन, रतनलाल और अभी हाल में तीस्ता सीतलवाड़ और फिल्मकार अविनाश दास की जिस तरह से गिरफ्तारी हुई, इससे यह पता चलता है कि भारत की संस्थाएं भी किस तरह अपने विवेक को ताख पर रख नागरिक प्रतिरोध की हर आवाज को कुंद करने में लगी हुई है। आज न हमारा नागरिक समाज सुरक्षित है, न मीडिया, न मानव अधिकार कार्यकर्ता और न यहां का बौद्धिक समाज।

छतीसगढ़, मध्य प्रदेश, झारखंड, आड़िशा आदि कोई ऐसा प्रांत नहीं है जहां सरकार द्वारा व्यापक पैमाने पर लूट न हो रही हो। इन सब जगहों पर आदिवासी, किसानों की जमीनें असंवैधानिक रूप से हड़पी जा रही हैं । इसका विरोध समाज के व्यापक हिस्से में हो रहा है, लेकिन उसकी शायद ही कोई खबर मुख्यधारा की मीडिया आई हो। पास्को, हिडाल्को, बाक्साइट, सुंदरगढ़ और खंडवा माली पर्वत को बचाने के लिए आंदोलनों की एक लम्बी फेहरिस्त हम देख सकते हैं। इन सब प्रकरणों में सरकार नागरिकों की जगह हमेशा कारपोरेट हितों को प्राथमिकता देती रही है। आखिर जल, जंगल, जमीन और पर्यावरण को खुलेआम कारपोरेट मुनाफे के लिए बेचे जाने के पीछे किसका हित काम कर रहा है?

सड़क, हाइवे और भवन निर्माण को ही आज सरकारें असली विकास मान रही हैं। इस विकास के लाभार्थी

कौन हैं, इससे किनका हित सध रहा है, यह सवाल महत्वपूर्ण है। इसके लाभार्थी समाज के वे चंद लोग हैं जिसकी कीमत एक बड़ी आबादी को चुकानी पड़ रही है। हमें विकास के इस वैकल्पिक माडल के बारे में सोचना होगा। लोकतंत्र में संख्याबल महत्वपूर्ण है, लेकिन कोई सरकार सत्तासीन होकर अगर अपने ही नागरिकों का दमन कभी एन.आर.सी, सी.ए.ए, कृषि बिल और अग्निपथ के नाम पर करे तो इसे हम क्या कहेंगे? भाजपा सरकार में देश विरोधी नीतियों की नींव संसद के माध्यम से धुआंधार रखी जा रही है। यह देश के अंधायुग में प्रवेश की निशानी है। यह सरकार जो नीतियां बनाती रही है उसके केंद्र में यहां की जनता नहीं, कारपोरेट और अडानी, अंबानी रहे हैं। आज रक्षा, रेलवे, शिक्षा, स्वास्थ्य सब क्षेत्रों का हाल बुरा है। सरकार ने इन सब क्षेत्रों का निजीकरण करके इसे कारपोरेट के हाथों गिरवी रख दिया है।

विविध धर्मों,जातियों संस्कृतियों से भरे-पूरे इस देश को सुंदर, वैविध्यपूर्ण बनाने में जितना योगदान हिन्दुओं का रहा है उससे कम योगदान मुसलमानों, ईसाइयों, बौद्धिस्टों और सिक्खों का नहीं रहा। लेकिन हिन्दुत्व के झंडाबरदार तलवार के बल पर इन सब को मटियामेट कर देना चाहते हैं। उनका राष्ट्रवाद आस्था के सहारे हमें बर्बरता के दौर में ले जाने की कवायद से ज्यादा कुछ नहीं। देश महज भौगोलिक चैहद्दी नहीं होता। यह यहां के लोगों, उनकी साझी स्मृतियों से निर्मित होता है। लेकिन सरकार इन सब को विखंडित कर आस्था के सहारे मनुवाद के दौर में ले जाना चाहती है। यहां के नागरिक समाज को इस तरह खंड-खंड विभाजित कर दिया गया है कि वे उसी में जदोजहद करता मर मिट रहा है और सरकार अडानियों, अम्बानियों को शह देती फूट डालो और राज करो की भूमिका में अट्हास कर रही है। हम भविष्यहीनता, अतीतहीनता और भटके हुए वर्तमान के ऐसे मुकाम पर खड़े हैं जहां भारत ने जो भी मूल्य अर्जित किये थे, वे सब-के-सब लव जिहाद, 'देशद्रोह बनाम राष्ट्रभक्ति' के तुमुल कोलाहल में गर्क हो गया है। पिछले दिनों नरेंद्र सिंह और रमई राम का निधन हो गया। दोनों समाजवादी धारा से जुड़े अपने दौर की चर्चित शख्सियत रहे। राजद शासनकाल में लंबे समय तक मंत्री रहे और अपने तई महत्वपूर्ण काम किया। राजद समाचार परिवार उनकी स्मृति को नमन करता है।-**अरुण आनंद** ■

बजट कहां खर्च हुआ, सरकार को नहीं मालूम

अनिल जैन

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अक्सर यह दावा करते हैं कि उनकी सरकार अब तक की सबसे पारदर्शी सरकार है और उसने सरकारी योजनाओं में होने वाले भ्रष्टाचार को खत्म कर दिया है। लेकिन हकीकत इसके ठीक उलट है। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय को नहीं मालूम कि सांसद निधि यानी एमपी स्थानीय क्षेत्र विकास (एमपीएलएडी) योजना पर कोरोना काल में कितना धन खर्च किया गया। इस सांसद निधि से होने वाले कामों का क्रियान्वयन और उस पर निगरानी का काम सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय करता है।

इसी मंत्रालय ने लोकसभा में एक सवाल के लिखित जवाब में बताया है कि उसे इस बारे में कोई जानकारी नहीं है कि सांसद निधि को कोरोना महारामारी काल 2020-21 और 2021-22 के दौरान कैसे खर्च किया गया था। उसे यह भी जानकारी नहीं है कि इस निधि के लिए आवंटित बजट का पूरी तरह से उपयोग किया गया या नहीं।

एमपीएलएडीएस (एमपीलैड्स) केंद्र सरकार की योजना है जो सांसदों को अपने निर्वाचन क्षेत्रों में पेयजल, प्राथमिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वच्छता और सड़कों के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में सामुदायिक विकास कार्य करने के लिए दी जाती है। यह योजना वर्ष 1993 में पीवी नरसिंहराव सरकार के समय शुरू हुई थी।

शुरूआत में इस योजना के तहत हर सांसद को उसके निर्वाचन क्षेत्र के विकास के लिए एक करोड़ रुपये सालाना दिये जाते थे। बाद में यह राशि बढ़ते-बढ़ते पांच करोड़ रुपये हो गई। अब प्रत्येक संसदीय निर्वाचन क्षेत्र को हर साल ढाई-ढाई करोड़ रुपये की दो किस्तों में पांच करोड़ रुपये आवंटित किए जाते हैं।

कोरोना काल के दौरान सांसद निधि काफी चर्चा में रही थी। ऐसा इसलिए कि कोरोना महामारी की वजह से 2020 में केंद्र सरकार ने सांसद निधि पर रोक लगा दी थी। वर्ष 2021 के आखिरी में सरकार ने घोषणा की थी कि सांसद निधि को फिर से बहाल कर दिया है। यह निधि वित्तीय वर्ष 2021-22 के लिए बचे हुए हिस्से के लिए बहाल की गई थी और कहा गया था कि 2025-26 तक जारी रहेगी।

सरकार ने कहा था कि 2021-22 की सांसद निधि के लिए प्रत्येक सांसद को दो-दो करोड़ रुपये की किस्त आवंटित की जाएगी। इसके बाद हर साल ढाई-ढाई करोड़ रुपये की दो किस्तें जारी की जाएंगी।

बहरहाल, इसी सांसद निधि को लेकर अब सरकार से सवाल पूछा गया था कि आखिर कोरोना काल में सांसद निधि का कितना इस्तेमाल किया गया। बहुजन समाज पार्टी के सांसद श्याम सिंह यादव के एक सवाल के लिखित जवाब में सरकार ने कहा कि सांसद निधि को 'स्वास्थ्य और समाज पर कोविड-19 के प्रतिकूल प्रभावों के प्रबंधन के लिए वित्त मंत्रालय के अधीन रखा गया था।' इसमें कहा गया है कि मंत्रालय के पास 'इस बारे में कोई डेटा या विवरण नहीं है कि इस हेतु आवंटित बजट का उपयोग किन उद्देश्यों के लिए किया गया है या क्या इसका कोई हिस्सा बिना इस्तेमाल का रहा है।'

यादव के सवाल के जवाब में सांख्यिकी मंत्रालय ने कहा है कि 2019-20 में पूरी सांसद निधि उपलब्ध कराई गई थी और कुछ भी निलंबित नहीं किया गया था। 2020-21 में प्रति सांसद पांच करोड़ रुपये की पूरी सांसद निधि निलंबित कर दी गई थी और कुछ भी उपलब्ध नहीं कराई गई थी। 2021-22 में एमपीलैड्स फंड यानी सांसद निधि आंशिक रूप से जारी की गई थी और हर निर्वाचन क्षेत्र में दो करोड़ रुपये उपलब्ध कराए गए थे।

गौरतलब है कि केंद्र सरकार ने अप्रैल 2020 में वित्तीय वर्ष 2020-21 और 2021-22 के दौरान एमपीएलएडीएस को संचालित नहीं करने का निर्णय लिया था और महामारी के प्रबंधन के लिए धन को वित्त मंत्रालय के अधीन कर दिया था। हालांकि बाद में इसे बहाल कर दिया गया था।

(अनिल जैन वरिष्ठ पत्रकार हैं। दिल्ली में रहते हैं।)

मिले कर्पूरी ठाकुर को 'भारत रत्न'

तेजस्वी प्रसाद यादव

बिहार लोकतंत्र की जननी है। यहां से एक संदेश पूरे देश में जाना चाहिए। हम अलग-अलग दलों से इस विधानमंडल में हैं। लेकिन हमारी वैचारिक प्रतिस्पर्धा राजनीतिक शत्रुता में नहीं बदलनी चाहिए। समाज के हर वर्ग को उनकी आबादी के अनुसार भागीदारी और हिस्सेदारी से ही लोकतंत्र समृद्ध और समावेशी होगा। माननीय प्रधानमंत्री जी, जैसा मैंने पहले कहा कि हमारे राज्य के वैशाली से ही लोकतंत्र बाकी जगहों पर प्रसारित हुआ। अतः मैं आपसे आग्रह करता हूं कि School of Democracy & Legislative Studies जैसी एक संस्था बिहार में स्थापित हो, जिसके माध्यम से विधायी और लोकतंत्र के विभिन्न पहलुओं पर शोध एवं अध्ययन के अवसर और प्रशिक्षण दिये जा सकें। पूरे देश के जनप्रतिनिधियों, युवाओं और संबंधित कर्मचारियों को इससे लाभ मिलेगा। आशा है आप हमारी इस मांग पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे।

आदरणीय प्रधानमंत्री जी, आपने Deserving और विशेषज्ञ व्यक्तियों को पद्मश्री, पद्म विभूषण इत्यादि सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार देने की एक स्वस्थ एवं सकारात्मक परंपरा स्थापित की है। बिहार विधानसभा के इसी प्रांगण में हम जननायक कर्पूरी ठाकुर जी की आदमकद प्रतिमा की बगल में बैठे हैं। हमारी मांग है कि जननायक कर्पूरी ठाकुर जी को 'भारत रत्न' देकर इस शताब्दी वर्ष समारोह एवं देश के किसी भी प्रधानमंत्री के बिहार विधानसभा प्रांगण में प्रथम आगमन को और अधिक यादगार बनाने की कृपा करें।

यहां उपस्थित हरेक माननीय सदस्य की यह हार्दिक इच्छा है कि जननायक कर्पूरी ठाकुर जी को अवश्य ही 'भारत रत्न' मिलना चाहिए। लोकतंत्र के समक्ष कई चुनौतियां हैं लेकिन हम सामूहिक प्रयास और संकल्प से जनतंत्र को धनतंत्र और छलतंत्र से बचा सकते हैं। हमारे पुरखों ने हमें लोकतंत्र की समृद्ध विरासत सौंपी है। आवश्यकता है कि हम सब मिलकर विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की जड़ों को और मजबूत करें। विधानसभा के शताब्दी वर्ष में यही चुनौती भी है और अवसर भी। पुनः आप सभी को तहे दिल से धन्यवाद और प्रणाम।

(बिहार विधानसभा शताब्दी समारोह में प्रधानमंत्री की सभा में नेता प्रतिपक्ष, बिहार का दिया गया भाषण।)

पाठकीय अभिमत

पत्रिका का ई संस्करण भी निकले

अत्यंत हर्ष के साथ आपको सूचित कर रहा हूं कि जून माह में प्रकाशित मासिक पत्रिका राजद समाचार का ग्यारहवां अंक मैंने अभी-अभी पढ़ा है। ऐसे तो राजद समाचार के लगभग सभी अंक के सभी पन्नों को पढ़ता रहा हूं लेकिन इसबार हर्ष की कई वजहें हैं। पहली व महत्वपूर्ण वजह यह है कि राजद समाचार के संस्थापक सम्पादक महोदय ने जून माह के प्रारंभ में ही राष्ट्रीय जनता दल को अलविदा कह दिया। मुझे लग कि शायद जून माह का अंक प्रकाशित नहीं हो पाएगा, लेकिन आपने यह अंक निकाल कर साबित कर दिया कि विचारधारा एक-दो व्यक्ति के आने-जाने से नहीं रुकती। कोई न कोई विचारों की मशाल को जलाए रखता है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि सामाजिक न्याय के पक्षधर लोगों की एक बड़ी जमात है, जिसमें एक से बढ़कर एक जुझारू, क्रांतिकारी एवं सृजनशील बुद्धिजीवी हैं।

दूसरी वजह आप का संपादकीय है, जो बहुत ही मौजूं विषय पर फोकस है- 'जाति गणना के निहितार्थ'। बहुत ही सूक्ष्म अवलोकन के साथ विस्तृत विश्लेषण किया गया है। मण्डल आंदोलन से लेकर बिहार सरकार द्वारा जाति की गणना/सर्वे कराने की घोषणा तक वाया यूपीए-2 कार्यकाल में लालू प्रसाद और राजद की ओर से आवाज बुलन्द रही है। जातिगत जनगणना पर केंद्रित सीएसडीएस, नई दिल्ली के निदेशक प्रो. संजय कुमार और फॉरवर्ड प्रेस के हिन्दी संपादक नवल किशोर कुमार की बातचीत से स्थिति और साफ हो गई। प्रो. कुमार ने जातिगत जनगणना से जुड़ी कई भ्रांतियों को दूर कर दिया है। आपने अपने संपादकीय में हाल ही में समस्तीपुर, बिहार में महंगाई और सूदखोरी के कारण आर्थिक तंगी से परेशान व हताश-निराश होकर मनोज झा को अपने पांच सदस्यीय परिवार के आत्महत्या करने को मजबूर होने की खबर को रेखांकित कर स्पष्ट कर दिया है कि यह पत्रिका सिर्फ पार्टी की गतिविधियों को ही नहीं बल्कि आम जनता के आंदोलनों और दुःख-दर्द को भी जगह देती है और उनके हक-हुकूक के लिए उनके साथ मजबूती से खड़ी होती है।

तीसरी वजह सम्पूर्ण-क्रांति की उद्घोषणा की 48वीं वर्षगांठ पर राजधानी पटना के बापू सभागार में 05 जनू को राजद नेता तेजस्वी यादव की अध्यक्षता में आयोजित महागठबंधन प्रतिनिधि सम्मेलन का 'साम्प्रदायिकता एवं कुशासन के खिलाफ महागठबंधन का उद्घोष' शीर्षक से विस्तृत, तथ्यात्मक, तार्किक एवं प्रासंगिक प्रतिवेदन है। इस अंक में मुख्य रूप जाति जनगणना तथा लोकनायक जयप्रकाश नारायण को केंद्र में रखा गया है, लेकिन संक्षेप में ही सही बिरसा मुंडा तथा गांधी जी से सम्बंधित आलेख भी प्रस्तुत हैं। आखिरी वजह आपके संपादकीय की आखिरी पंक्तियां हैं, जो निम्नलिखित हैं- "हमारी कोशिश होगी कि यह दूर-दराज के इलाकों में फैले राजद के लाखों-लाख कार्यकताओं का वैचारिक-राजनीतिक मंच बने। हमारी दिली कामना है कि यह पत्रिका बिहार और देश-विदेश के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक हलचलों का सशक्त दस्तावेज बने।" आपकी कोशिश एक दिन जरूर आपकी दिली कामना को

पूर्ण करेगी।
मुझे लगता है कि पत्रिका को व्यापक बनाने के लिए अधिक से अधिक मौलिक लेख व रचनाएं आमंत्रित करनी चाहिए और उसके लिए पत्रिका में पता व ईमेल मुहैया कराना चाहिए। यदि ई-राजद समाचार संस्करण भी निकाला जाए तो अधिक से अधिक लोग इससे जुड़ सकते हैं, क्योंकि सोशल मीडिया में राजद सबसे सक्रिय पार्टी है। लेखकों की सहमति हो तो उनके नाम के साथ उनका पद व कार्यस्थल भी रेखंकित किया जा सकता है। संभव हो तो सामान्य पत्रिका की तरह इसका भी कवर-पेज बनवाया जाए।

डॉ. दिनेश पाल

(सहायक प्राध्यापक
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा।)

नियमित प्रकाशन हो

राजद समाचार के कुछ अंक हमारे सामने हैं। यह पत्रिका निरंतर आकर्षक होते जा रही है। इसके सभी अंक संग्रहणीय हैं। कुछ अंक तो संदर्भ हेतु संजोने योग्य हैं। जननायक कपूर्री ठाकुर और जगदेव प्रसाद वाले विशेषांक इसी कोटि के हैं। 'विरासत' स्तंभ के अंतर्गत महानायकों के धारावाहिक प्रकाशित विचार महत्वपूर्ण है। जून-2022 वाले अंक में श्वेता शेखर की कविता 'शून्यकाल का प्रश्न' विचार करनें को विवश करती है। जाति जनगणना पर संजय कुमार से नवल किशोर की बातचीत सार्थक है और संपादकीय भी बहुत गहराई से इस सवाल से टकराता है।
पत्रिका के आगामी अंकों में संविधान, धर्मनिरपेक्षता, आरक्षण, क्रीमी लेयर, जातीय जनगणना, सामाजिक,आर्थिक,राजनैतिक,सांस्कृतिक न्याय से संबंधित रचनाएं आप देते रहेंगे इसकी आशा करते हैं। पत्रिका लगातार निकलती रहे इसकी हम कामना करते हैं।

रवीन्द्र राम

(उपाध्यक्ष, अखिल भारतीय ओबीसी कर्मचारी महासंघ।)

कम-से-कम हस्तक्षेप हो

मासिक राजद समाचार का 11जून,2022 अंक मिला। इसके पूर्व के भी इसके कुछ अंक पढ़ने का सुयोग मिलता रहा है। संपादक प्रेमकुमार मणि जब राजद से अलग हुए तो थोड़ी आशंका हुई कि क्या 'राजद समाचार' बंद हो जाएगा? वैसे मैं इस बात से मुत्मईन था कि राजद के प्रदेश अध्यक्ष श्री जगदानंद सिंह के रहते यह पत्रिका बंद नहीं होने वाली है। 'राजद नेतृत्व' को यह काम बहुत पहले से करना चाहिए था, लेकिन देर ही सही बहुत जरूरी काम पार्टी कर रही है। पत्रिका राजद के 'सामाजिक न्याय' की विचारधारा को आगे बढ़ाने का काम कर रही है। बिहार और देश-विदेश के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक हलचलों का सशक्त दस्तावेज बने '। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप अपने इस संकल्प को पूरा करने में सफल होंगे।क्योंकि अल्प समय में आपने इस पत्रिका में जो सामग्री शामिल की है उसे देखने के बाद मैं पूरी गंभीरता से कहना चाहूंगा कि 'यह गागर में सागर भरने 'जैसा है।
पहले थोड़ी चर्चा ' जाति गणना के निहितार्थ ' शीर्षक से लिखी गई संपादकीय पर करना चाहूंगा। संपादक सवालिया लहजे में पूछते हैं कि ' कौन हैं वे लोग जो जाति गणना से इतना डरे हुए हैं? इसका उत्तर देते हुए वे खुद लिखते हैं ' इस षडयंत्र में समाज का वह विशेषाधिकार प्राप्त तबका शामिल है,जिसे मालूम है कि अगर यह पब्लिक स्पेस में आ गया तो वंचित वर्गों के लिए और ज्यादा प्रभावी और विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के लिए घातक साबित होगी।ये विशेषाधिकार प्राप्त समूह हर घात-प्रतिघात लगाकर भी इस गणना को सार्वजनिक नहीं किए जाने में आज तक सफल रहे हैं '।
इस अंक में संपूर्ण क्रांति दिवस पर पटना में आयोजित महागठबंधन में शामिल दलों द्वारा की गई सभा की विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की गई है जो गठबंधन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। गठबंधन द्वारा 32पृष्ठों का आरोप पत्र वर्तमान बिहार सरकार (N.D.A.)पर लगाया गया है।जिसका लोकार्पण संपूर्ण क्रांति दिवस पर किया गया।
प्रसंगवश चर्चा करना चाहेंगे कि इस देश ने वर्ष 1989 से लेकर 2002 के गुजरात दंगे को देखा है। न सिर्फ कम्युनिस्ट पार्टियां बल्कि समाजवादी विचारधारा की पार्टियां इस 'सांप्रदायिक फासीवादी विचारधारा' की पार्टी को रोकने की बात करती रही है लेकिन क्या वजह है कि उसे हम रोकने में अब तक विफल रहे हैं। इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार किए जाने की जरूरत है। हमें इस बात पर भी विचार करने की जरूरत है कि आखिर वह कौन-सी ताकत है जिसे एकजुट कर इस सांप्रदायिक फासीवादी विचारधारा को शिकस्त दी जा सकती है। वर्तमान सत्ताधारी पार्टी इस देश में गृहयुद्ध करने की ओर तत्पर है। इसे रोकने के लिए क्या कुछ कदम उठाया जाए यह हमारे समय का सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न है।
संपूर्ण क्रांति दिवस पर 'संपूर्ण क्रांति का प्रस्थान बिंदु' शीर्षक से कथाकार शिवदयाल जी का आलेख आज के समय के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक प्रसंग में 'गांधी का भारत में पहला सार्वजनिक भाषण' शीर्षक से शिवकुमार जी ने बढ़िया प्रसंग का उल्लेख किया है। गांधी के वक्तव्य से सभागार में हलचल मच जाती है। राजे-रजवाड़े उठकर जाने लगते हैं, एनीबेसेंट उन्हें रोकती हैं। वे गांधी को भी भाषण में दो तीन बार बीच में टोकती हैं। लेकिन सभागार में मौजूद लोग कहते हैं कि गांधी को बोलने दिया जाय।' इस पूरे घटनाक्रम से हमें जो चीज गांधी से सीखनी चाहिए वह है निर्भयता का सतत अभ्यास।
साक्षात्कार कॉलम के तहत सी.एस.डी.एस. नई दिल्ली के निदेशक प्रो.संजय कुमार से फारवर्ड प्रेस के हिंदी के संपादक नवल किशोर कुमार द्वारा लिया गया विशेष साक्षात्कार। इसमें उन्होंने 'जाति गणना' के परिणामों पर विस्तार से चर्चा किया है साथ ही उन लोगों की आशंकाओं को भी दूर किया है जो लोग यह मानते हैं कि इससे समाज में तनाव उत्पन्न होगा। उनका मानना है कि जब तक हमारे पास जाति के साथ -साथ आर्थिक आंकड़े नहीं होंगे तब तक हम देश के विकास के लिए कोई ठोस नीति बनाने में विफल रहेंगे। इसलिए जातीय जनगणना हमारे समय की मांग है। शहादत दिवस कॉलम के तहत "बिरसा मुंडाः एक अविस्मृत आदिवासी लड़का" शीर्षक के तहत राजन कुमार का बढ़िया आलेख है। विरासत कॉलम के तहत सामाजिक लोकतंत्र शीर्षक से लोकनायक जयप्रकाश नारायण का भाषण कई मायने में जानकारी से युक्त है। श्वेता शेखर की कविता बहुत ही समसामयिक है। राजद समाचार नियमित रूप से प्रकाशित हो और पार्टी नेतृत्व का कम से कम हस्तक्षेप हो यही कामना है। ■

विनय कुमार सिंह

(राजनीतिक विश्लेषक बरियारपुर, मुंगेर।)

अग्निपथ के 10 झूठों का सच

योगेन्द्र यादव

पहला झूठ : अग्निपथ योजना हमारी सेना को पहले से ज्यादा युवा और मजबूत बनाने के लिए लाई गई है।

सच : उम्र तो बहाना है, असली बात खर्च घटाना है। हमारी सेना बूढ़ों की नहीं, जवानों की है। इसीलिए सिर्फ 15 साल की सेवा के बाद जवान को 32 से 35 साल की उम्र में रिटायर कर दिया जाता है। इस बीच हर साल उसकी ताकत, फुर्ती और सहन शक्ति टेस्ट की जाती है। वैसे कुछ समय पहले तो सेनाध्यक्ष रावत रिटायरमेंट की उम्र बढ़ाने की बात कर रहे थे, अब अचानक उम्र घटाने की चिंता कैसे? यूं भी अगर औसत उम्र घटानी ही थी तो पक्की नौकरी की अवधि 2-3 साल घटाई जा सकती थी। अचानक सिर्फ 4 साल की कच्ची नौकरी में बदलने की क्या जरूरत थी?

दूसरा झूठ : अग्निपथ योजना से सेना की तकनीकी क्षमता बढ़ेगी।

सच : तकनीकी रूप से सक्षम होने के लिए लम्बी ट्रेनिंग की जरूरत होगी। 10वीं पास जवान को सिर्फ 4 साल के लिए भर्ती करने से तकनीकी क्षमता कैसे बढ़ेगी? इतने समय में अग्निवीर राइफल चलाना तो सीख लेगा, लेकिन आधुनिक तोप और मिसाइल दागने, टैंक चलाने या फिर नौसेना और एयरफोर्स की मशीन में महारत कैसे हासिल होगी ?

तीसरा झूठ : इस योजना से युवाओं को बड़े पैमाने पर रोजगार मिलेगा।

सच : दरअसल रोजगार के अवसर कम होंगे। अब तक हर साल सेना में 50 से 80 हजार सीधे पक्की भर्तियां होती थीं, अग्निपथ योजना से उन्हें खत्म कर दिया गया है। अब आगे से सेना में डायरेक्ट पक्की भर्ती नहीं होगी। पिछले 2 साल में जो भर्तियां अधूरी थीं, उन्हें भी रद्द कर दिया गया है। उसके बदले हर साल 45 से 50 हजार कॉन्ट्रैक्ट की भर्तियां होंगी। उनमें से एक चौथाई यानी लगभग 12 हजार जवानों को हर साल पक्की नौकरी मिलेगी। अगर हर साल एक लाख अग्निवीर भी भर्ती कर लिए जाएं, तब भी अगले 15 साल में भारतीय सेना में कुल नियमित सैनिकों की संख्या 12 हजार जवानों को हर साल पक्की नौकरी मिलेगी अगर हर साल एक लाख अग्निवीर भी भर्ती कर लिया जाएं तब भी अगले 15 साल में भारतीय सेना में कुल नियमित सैनिकों की संख्या 12 लाख से घटकर 40 लाख या और कम हो जाएगी।

चौथा झूठ : इस योजना में भर्ती होने वाले अग्निवीरों को बहुत फायदे होंगे, वेतन मिलेगा बचत होगी और स्थाई नौकरी के मौके मिलेंगे।

सच : 4 साल की किसी भी नौकरी से कुछ न कुछ फायदा तो होगा ही। सवाल यह है कि क्या पक्की नौकरी में जो वेतन,भत्ते पेंशन ग्रेच्युटी और ट्रेनिंग मिलती है उससे बेहतर 4 साल की कच्ची नौकरी से मिलेगी? 4 साल बाद पक्की सरकारी या प्राइवेट नौकरी की सब बातें झांसा हैं। सच तो यह है कि सरकार 15-20 साल की नौकरी करने वाले पूर्व सैनिकों को भी नौकरी नहीं दे पाई है। कुल 5,69,404 पूर्व सैनिकों ने नौकरी के लिए पंजीकरण कराया था जिनमें से मात्र 14,155(यानी मात्र 2.5 प्रतिशत) को सरकारी, अर्धसरकारी, निजी क्षेत्र में रोजगार मिल

ठेके पर सैनिकों की बहाली का निर्णय प्रलयंकारी

आज सरकार के प्रत्येक कार्य एवं गतिविधियों पर मनमानापन एवं तानाशाही प्रवृत्ति हावी है। देश के प्रत्येक संवैधानिक संस्था को कमजोर कर खत्म करने की साजिश की जा रही है। समाज के अंतिम पायदान पर खड़े दलितों, पिछड़ों, अति पिछड़ों, गरीबों एवं अकलियतों में घोर निराशा एवं डर का माहौल बना दिया गया है। संविधान द्वारा प्रदत्त और आजादी की लम्बी लड़ाई और कुर्बानी के बाद हासिल लोकतंत्र को महत्वहीन कर समाप्त किया जा रहा है। पूर्ववर्ती सरकारों द्वारा देशहित में बनाये गए रेलवे, बैंक, एयर लाइन्स, एल.आई.सी, दूरसंचार, भेल, सेल सहित अनेकों सम्पत्तियों एवं सार्वजनिक उपक्रमों का चंद पूंजीपतियों के इशारे पर निजीकरण किया जा रहा है। दुर्भाग्यवश इतना बुरा असर देश की आम जनता एवं युवाओं पर पड़ा जिससे वे बेरोजगार होकर त्राहिमाम कर रहे हैं।

सरकार के अधीन विभिन्न विभागों में 50 लाख से अधिक पद रिक्त हैं, लेकिन बहाली नहीं की जा रही है। समाज का हर वर्ग सड़क पर आंदोलन कर रहा है, जिससे आप भी भलीभांति अवगत हैं। गरीब और गरीब होते जा रहे हैं एवं अमीर और अमीर होते जा रहे हैं। उनके दुःखों और तकलीफों को कोई सुनने वाला नहीं है। देश को कल्याणकारी राज्य के स्थान पर प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी में बदला जा रहा है, जिसकी बागडोर चंद पूंजीपतियों के हाथ में है। विदित है कि इन्हीं पूंजीपतियों को खुश करने के लिए कृषि बिल लाया गया था, जिससे कि ये पूंजीपति फसलों की जमाखोरी कर देश की जनता को चूस सकें और अन्नदाता किसानों का शोषण कर सकें। इसी क्रम में अब देश के रक्षक भारतीय सेना को भी तबाह करने का एक तानाशाही निर्णय लिया गया है जिससे न तो देश का भला होगा और न ही हमारे बहादुर सैनिकों का।

इस निर्णय के तहत प्रत्येक चार सैनिक में से तीन को चार साल संविदा की नौकरी के बाद निकाल दिया जाएगा। विशेषज्ञों का मत है कि संविदा पर चार वर्ष की नौकरी से सेवानिवृत्ति के बाद सम्मानजनक काम नहीं मिलने पर 22-23 वर्षीय प्रशिक्षण प्राप्त इन बेरोजगार युवाओं से विधि व्यवस्था से संबंधित समस्या उत्पन्न हो सकती है। ठेके पर सैनिकों की बहाली का यह प्रलयंकारी निर्णय है।

इस सेना नियुक्ति प्रक्रिया के विरोध में लोकतांत्रिक तरीके से प्रदर्शन कर रहे युवाओं एवं बेरोजगारों पर सरकार द्वारा की जा रही राजनीति से प्रेरित दमनकारी एवं द्वेषपूर्ण कार्रवाई पर अविलम्ब रोक लगाई जाए एवं उनपर दर्ज मुकदमे वापस लिये जाएं। ये प्रदर्शनकारी कोई आतंकवादी नहीं हैं, ये अपने भविष्य के प्रति चिंतित हो अपने लोकतांत्रिक अधिकारों का ही तो प्रयोग कर रहे हैं। महामहिम जी, आप राज्य में संविधान के सबसे बड़े संरक्षक हैं। उपर्युक्त परिस्थितियों के मद्देनजर संविधान को बचाने एवं देशहित में आप समुचित निर्णय लें।

(तेजस्वी प्रसाद यादव के नेतृत्व में महागठबंधन नेताओं द्वारा अग्निपथ के विरोध में राज्यपाल, बिहार को दिया गया पत्र।)

महागठबंधन नेताओं का शिष्टमंडल अग्निपथ के विरोध में नेता प्रतिपक्ष के नेतृत्व में राज्यपाल, बिहार को ज्ञापन सौंपते हुए।

पाया। ऐसे में अग्निवीर को नौकरी दिलवाने की बात सिर्फ जुमला है।

पांचवां झूठ : इस योजना से नई पीढ़ी के लगभग सभी युवाओं को देशसेवा का मौका मिलेगा, उन सब में देशभक्ति का जज्बा पैदा होगा।

सच : भारत में 'देशप्रेम' और बेरोजगारी दोनों इतनी अधिक है कि यहां सेना में भर्ती होने के लिए लाखों युवा हमेशा खड़े मिलते हैं। हमारे देश में साढ़े 17 से 21 वर्ष की आयु के लगभग 12 करोड़ युवा हैं। हर वर्ष अढ़ाई करोड़ युवा (सवा करोड़ लड़के) अग्निवीर के आयु वर्ग में प्रवेश करेंगे। जाहिर है, इनमें से 1 प्रतिशत को भी कभी अग्निवीर बनने का मौका नहीं मिलेगा।

छठा झूठ : दुनिया के कई देशों में सेना में अल्पकालिक भर्ती होती है। हमारे यहां भी सेना में अफसरों की भर्ती में 5 साल का शार्ट सर्विस कमीशन है।

सच : छोटे देशों से हमारी तुलना बेतुकी है। इजराइल जैसे देशों में सैन्य भर्ती अनिवार्य है, नहीं तो उन्हें सेना में भर्ती के लिए युवा नहीं मिलते। अनिवार्य सेवा 2-4 साल से ज्यादा नहीं करवाई जा सकती। वैसे भी इन देशों में अल्पकालिक भर्ती के अलावा डायरेक्ट पक्की भर्ती भी होती है। अग्निपथ योजना में इसे बंद किया जा रहा है। इसी तरह शार्ट सर्विस कमीशन योजना अफसर रैंक के लिए अच्छे उम्मीदवारों की कमी को पूरा करने के लिए थी। उस योजना के कारण कभी भी सेना में अफसरों को डायरेक्ट और पक्की भर्ती रोकी नहीं गई।

सातवां झूठ : कारगिल युद्ध के बाद बनी रिव्यू कमेटी और कई विशेषज्ञों ने इसकी सिफारिश की थी।

सच : कारगिल समिति में कहीं यह नहीं कहा कि 4 साल के लिए नियुक्तियां की जानी चाहिए। समिति ने यह सलाह दी थी कि जवानों को शुरू से 7-10 वर्षों में सेना में नियुक्तियां की जानी चाहिए। उसके बाद उन्हें अन्य बलों जैसे ही सी.आई.एस.एफ., बी.एस.एफ. आदि में स्थानांतरित किया जा सकता है। पक्की नौकरी खत्म कर कॉन्ट्रैक्ट की बात किसी समिति या विशेषज्ञ ने नहीं की। इस योजना को संसद या संसद की रक्षा मामलों की स्थाई समिति के सामने कभी पेश भी नहीं किया गया।

आठवां झूठ : थल सेना, नौसेना और वायु सेना के प्रमुख इस योजना का समर्थन कर रहे हैं।

सच : उनके पास सरकार की हां में हां मिलाने के सिवा और रास्ता क्या है? अगर अनुभवी देशभक्त सैनिकों के मन की बात सुननी है तो रिटायर्ड सेना अधिकारियों, पूर्व जनरल और परमवीर चक्र विजेता बाना सिंह और योगेंद्र सिंह यादव जैसी आवाजों को सुनना चाहिए ।

नौवां झूठ : अग्निवीर योजना को युवाओं का समर्थन है वे इसके लिए रजिस्ट्रेशन करवाने को तैयार बैठे हैं।

सच : इस देश में बेरोजगारी की ऐसी हालत है कि आप 4 साल छोड़ो 4 महीने की नौकरी भी दोगे तो हर पोस्ट के लिए सैकड़ों उम्मीदवार खड़े मिलेंगे। यहां चपरासी की नौकरी के लिए पीएचडी करने वाले अप्लाई करते हैं। इससे युवाओं की मजबूरी साबित होती है, योजना की मजबूती नहीं।

दसवां झूठ : सरकार के खजाने पर पेंशन और वेतन का बोझ कम होगा।

सच : असली बात यही है। यह सच है कि रक्षा बजट का लगभग 40 प्रतिशत वेतन और पेंशन में चला जाता है, लेकिन इसका समाधान यह नहीं कि हम डायरेक्ट और पक्की भर्ती ही रोक दें। सेनाबल की संख्या आधी कर दें। समाधान यह होगा कि रक्षा बजट को बढ़ाया जाए। लेकिन मोदी सरकार ने रक्षा बजट को 2017-18 में केंद्र सरकार के खर्च के 17.8 प्रतिशत से घटाकर 2020-21 में 13.2 प्रतिशत कर दिया। समाधान यह भी हो सकता था कि रक्षा बजट में गैर सैनिक (सिविलियन) कर्मचारियों के वेतन और पेंशन में कमी की जाए। सैनिकों की सेवानिवृत्ति की आयु और पेंशन राशियों पर भी विचार हो सकता था, लेकिन एक झटके में पेंशनधारी नौकरियों को ही खत्म कर देना तो देश की सुरक्षा के साथ खिलवाड़ है। क्या आज के हालात में हम देश की सुरक्षा में कंजूसी कर सकते हैं? ■

राजीवनगर : भूमाफियाओं और भ्रष्ट्र अधिकारियों का चारागाह

शरद कुमार/श्रीनाथ

पिछले कई दिनों से पटना के राजीवनगर मुहल्ले का नेपाली नगर कॉलोनी सुर्खियों में है। जिला प्रशासन की 22 बुलडोजर, 40 मजिस्ट्रेट, 50 पुलिस अफसर और एक हजार पुलिस जवानों के साथ अतिक्रमण हटाने के इरादे से पहुंची तो देखते-ही-देखते नेपाली नगर मुहल्ला, पुलिस और वहां के स्थानीय नागरिकों की लड़ाई का मैदान बन गई। पुलिस ने बल प्रयोग किया, लाठियां भांजी तो लोग बुलडोजरों के आगे दीवार बनकर खड़े हो गए। पुलिस की बर्बरता उग्रता में परिणत हुई तो लोगों ने पत्थरबाजी का सहारा लिया। पुलिस ने 5 राउंड हवाई फायरिंग की, डेढ़ सौ से अधिक आंसू गैस के गोले छोड़े। तनाव चरम पर पहुंचा तो डीएम, एसपी आये और पूरे नेपाली नगर को छावनी में बदल दिया।

दो दिनों के इस घटनाक्रम को प्रशासन ने एक ऐसे समय में अंजाम दिया जब कोर्ट में सुनवाई के पहले ही 75 मकान तोड़ डाले गए। वहां धारा 144 लगा दी गई। 26 नामजद लोगों को गिरफ्तार किया गया और तीन सौ अज्ञात लोगों पर केस किये गए। स्थानीय लोगों ने कोर्ट की शरण ली तो कोर्ट ने तत्काल इस प्रक्रिया पर रोक लगा दी। कोर्ट ने प्रशासन को तत्काल यह निर्देश दिया कि नेपाली नगर में रह रहे किसी भी व्यक्ति पर दंडात्मक कार्रवाई न की जाए। कोर्ट ने डीएम और बिहार राज्य हाउसिंग बोर्ड के कर्मचारी के एमडी को जवाबी हलफनामा दायर कर स्थिति स्पष्ट करने को कहा।

इस मामले में जस्टिस संदीप कुमार की एकलपीठ ने पूछा कि लोग मकान बना रहे थे तो बोर्ड अधिकारी कहां थे, क्या बोर्ड ने किसी अधिकारी को चिन्हित कर जवाबी कार्रवाई की? राजीव नगर का पूरा मामला बहुत पुराना है। वहां के स्थानीय भूस्वामियों ने इस मामले को लेकर लंबा संघर्ष किया है। समय-समय पर कोर्ट ने भी मानवीय आधार पर उनकी मांगों पर विचार किया, लेकिन सरकारों की उदासीनता और अधिकारियों की कर्तव्यहीनता के कारण यह समस्या लगातार विकराल होती गई।

दीघा के 1024 एकड़ जमीन के अधिग्रहण की सूचना 1944 में निर्गत की गई। दीघा की जमीन बहुफसली थी, लेकिन मूल्य मात्र दो हजार प्रति कट्ठा रखा गया था जो किसानों को मान्य नहीं था। 1976 में 1894 के कानून की धारा 6 के तहत किसानों को अपना पक्ष रखने के लिए अधिसूचना जारी की गई। 500 किसानों में कुल 985 रैयत थे जिसमें से 500 रैयतों ने इस अधिग्रहण के विरुद्ध अपना विचार दिया। 1894 के कानून के माध्यम से अधिग्रहण की सारी प्रक्रियाएं जिलाधिकारी के द्वारा मात्र एक पत्र लिखे जाने से सम्पादित हो जाती थी। 1977 में जिलाधिकारी ने पत्र निर्गत किया कि सभी शिकायतों का निराकरण कर लिया गया है। भूमि अधिग्रहण कानून 1894 में एक बाध्यकारी दफा सेक्शन 11 ए में कहा गया है कि अगर अवार्ड धारा 6 की अधिसूचना के दो साल के अंदर अगर घोषित नहीं होता है तो अधिग्रहण लैप्स कर

जाएगा। कानूनी रूप से यह अधिग्रहण उसी समय लैप्स कर गया था। अधिसूचना के 6 साल बाद 1980 में आर.एस. पांडेय का 4.43 एकड़ जमीन को अधिग्रहण से बाहर कर दिया गया। इसके विरुद्ध दीघा के किसान सर्वोच्च न्यायालय गए। सर्वोच्च न्यायालय में सुनवाई के दरम्यान कहा गया कि बिहार सरकार का यह पक्षपातपूर्ण रवैया है। इस निर्णय के माध्यम से संविधान की धारा 14 के द्वारा यह अधिग्रहण लैप्स कर गया है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने मानवीय पक्ष को ऊपर रखते हुए कहा कि 1024.52 एकड़ में 4.3 एकड़ का भूखंड नहीं भी रहने पर कॉलोनी की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन 4.3 एकड़ की यह जमीन 74 की अधिसूचना का हिस्सा है इसलिए बिहार सरकार को निर्देश दिया जाता है कि इसे पुनः अधिगृहीत कर लिया जाए ताकि 10.24 एकड़ का हिस्सा बना रहे।

सर्वोच्च न्यायालय ने आवास बोर्ड को निर्देश दिया कि अनावश्यक विलंब के लिए पूरे मुआवजे की राशि पर साढ़े 7 प्रतिशत का अतिरिक्त मुआवजा किसानों को दिया जाए ताकि पूर्व में घोषित मुआवजे की राशि के साथ अतिरिक्त मुआवजे की राशि को जोड़कर दिया जाए। 27 जनवरी 1995 को उच्च न्यायालय पटना ने जिलाधिकारी पटना को सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन के संबंध में एक शपथपत्र दायर करने का निर्देश दिया। जिलाधिकारी ने अपने शपथपत्र में कहा कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेशित अतिरिक्त मुआवजे की राशि बढ़कर 8 करोड़ 99 लाख हो गई, इसमें आर.एस. पांडे की मुआवजे की राशि को जोड़कर 9 करोड़ 9 लाख हो जाता है जिसका अभी तक भुगतान नहीं किया जा सका। बिहार सरकार ने 4.3 एकड़ का अभी तक अधिग्रहण नहीं किया है। बिहार राज्य आवास बोर्ड ने 7 जून 2005 को 9 करोड़ 9 लाख रुपये का भुगतान किया है जो 1995 की प्राक्कलित राशि थी। 7 जून 2005 को अतिरिक्त मुआवजे की राशि बढ़कर 36 करोड़ से ज्यादा हो गई। आज भी 22.8.84 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गए आदेश का अनुपालन न तो बिहार सरकार ने किया न ही आवास बोर्ड ने।

24.9.84 को 1894 के भूमि अधिग्रहण कानून की धारा 34 में संशोधन

हो गया। इस संशोधन के चलते आवास बोर्ड को दीघा के किसानों के लिए 12 करोड़ 91 लाख अतिरिक्त मुआवजे की देनदारी होगी। 4 जनवरी 1985 को भू-अर्जन पदाधिकारी पटना ने आवास बोर्ड को पत्र लिखकर 12 करोड़ 91 लाख अतिरिक्त मुआवजे का आदेश दिया लेकिन आवास बोर्ड ने उसपर ध्यान नहीं दिया। 2 फरवरी 94 को निदेशक भू-अर्जन ने जिलाधिकारी को सूचित किया कि मुआवजे एवं विलंब की राशि का भुगतान नहीं करने के कारण पूरी देय राशि बढ़कर 33 करोड़ से ज्यादा हो गई। आवास बोर्ड को शीघ्र भुगतान का आदेश दिया जाए नही तो दीघा का अधिग्रहण असंभव होगा।

3 दिसम्बर 1994 को प्रबंध निदेशक आवास बोर्ड ने सचिव राजस्व एवं भूमि सुधार को पत्र लिखा जिसमें कहा गया कि हमें केवल कागज पर जमीन मिली है जिसपर दखल-कब्जा अतिक्रमणकारियों एवं भूस्वामियों का है। इस अतिरिक्त मुआवजे की देनदारी मेरी नहीं प्रशासन की है। इसके बाद 2008 में बिहार राज्य आवास बोर्ड ने एक श्वेतपत्र के माध्यम से सरकार से आग्रह किया कि यहां का अधिग्रहण बेपटरी हो गया है। इसके समाधान हेतु एक व्यवस्था की जाए जिसमें दीघा आशियाना रोड के पूरब की घनी आबादी के गृस्वामियों के साथ बंदोबस्ती की जाए एवं शेष रोड के पश्चिम के 400 एकड़ के मुआवजे का भुगतान कर आवास बोर्ड के लिए उसको अधिगृहीत कर लिया जाए। इसी आधार पर बिहार राज्य विधायिका के द्वारा दीघा अर्जित भूमि बंदोबस्ती विधेयक 2010 26 अप्रैल, 2010 को अस्तित्व में आया।

विधेयक राजनीतिक कारणों से लाया गया था जिसे लाकर सरकार भूल गई। दिनांक 27.9.13 को उचित मुआवजा, पारदर्शिता, पुनर्वास एवं पुनर्स्थापन अधिनियम 2013 भारत के राजपत्र में अधिसूचित हो गया। केंद्र का कानून आने के बाद बिहार सरकार की नींद खुली और विधेयक में उपलवध प्रावधान को नगर विकास विभाग के आफिशियल गजट में अधिसूचित कर दिया गया। इस तरह दीघा अर्जित भूमि बदोबस्ती अधिनियम 2010 बना।

नियमावली और स्कीम के बिना अधिनियम निष्प्रभावी था जिसके लिए उच्च न्यायालय में एक लोकहित याचिका दायर करते हुए मांग की गई कि दीघा अर्जित भूमि बंदोबस्ती अधिनियम 2010, दीघा के लोगों की बेहतरी के लिए लाया गया था, लेकिन कतिपय कारणों से अभी तक नियमवावली एवं स्कीम नहीं बन सका। जून 2014 में उच्च न्यायालय की डबल बेंच ने आदेश देते हुए कहा कि नियमावली एवं स्कीम बनाकर तथा धारा 9 के तहत इसे लागू कर बेंच के समक्ष आदेश के 60 दिन के अन्तर्गत उपस्थापित करें अन्यथा सभी संबंधित लोगों पर अवमानना की कार्यवाही प्रारंभ कर दी जाएगी। 19.8.14 के मंत्रिपरिषद् की बैठक में नियमावली एवं स्कीम पारित कर दिया गया। दीघा अर्जित भूमि बंदोबस्ती स्कीम 2014 में कहा गया है कि अप्राधिकृत अधिभोगियों के लिए दीघा-आशियाना रोड से पूरब और पश्चिम में बसाने के संबंध में अलग-अलग प्रावधान किये गए। दीघा आशियाना रोड से पूरब के निर्मित मकानों को शुल्क के भुगतान के आधार पर गृहस्वामियों के साथ बंदोबस्त करने एवं खाली जमीन को मुआवजा भुगतान कर आवास बोर्ड के लिए अर्जित कर लिया जाएगा।

दीघा-आशियाना से पश्चिम 400 एकड़ के लिए निर्मित मकानों के गृहस्वामियों को आवास बोर्ड के द्वारा बनाई गई बहुमंजिली इमारतों में निर्माण के समानुपातिक आधार पर उनको फ्लैट दिया जाएगा। गृहस्वामी को शपथपत्र देना होगा कि बहुमंजिली इमारतों में फ्लैट लेने के पूर्व में अपने पूर्व में निर्मित मकान को ध्वस्त कराऊंगा। और खाली जमीन की रैयतों के लिए उस समय जो मुआवजा प्रभावी रहेगा उसी आधार पर भुगतान कर उनका जमीन आवास बोर्ड के लिए अर्जित कर लिया जाएगा। 1994 में आवास बोर्ड के प्रबंध निदेशक एवं जिलाधिकारी पटना के द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश पर अतिक्रमण के संबंध में 1024.52 एकड़ एक संयुक्त सर्वे की रिपोर्ट पेश की गई। उस रिपोर्ट में 30904 मकान निर्मित पाये गए थे जो दीघा आशियाना के दोनों तरफ अवस्थित थे।

दिनांक 26.7.95 को डिविजन बेंच ने सुनवाई करते हुए कहा कि इतने बड़े निर्माण को ध्वस्त करने का कोई भी न्यायालय आदेश नहीं दे सकता। अतः सुझाव दिया जाता है कि बिहार सरकार एवं आवास बोर्ड एक संयुक्त प्रस्ताव लेकर आये जिसके माध्यम से शुल्क/मुआवजे के भुगतान के आधार पर गृहस्वामियों को बंदोबस्त किया जा सके। दीघा अर्जित भूमि बंदोबस्ती विधेयक 2010 के प्रस्ताव में कहा गया है कि समय-समय पर दिये गए उच्च न्यायालय के आदेशों के आलोक में अप्राधिकृत अधिभोगियों एवं जो किसानों एवं सहकारी समितियों से भूखंड खरीद चुके हैं, उनको इस विधेयक के माध्यम से उनकी समस्याओं का समाधान किया जाएगा।

बिहार राज्य आवास बोर्ड के क्रियाकलाप को निर्देशित करनेवाली नियमावली में कहीं भी अधिग्रहण की प्रक्रिया में किसी संस्था को कोई भी जमीन देने का प्रावधान नहीं है जबकि दीघा के 1024 एकड़ में दीघा-आशियाना रोड से पूरब में सीआरपीएफ को 4.27 एकड़ एवं सी.पी.डब्लू.डी को एस.एस.बी, सीबीएसई बोर्ड गृह विभाग राजीवनगर थाना एवं पुलिस रेडियो को करीब 17 एकड़ का भूखंड बिना एक पैसा किसानों को भुगतान किये अवैध कब्जा ले लिया गया।

दीघा अर्जित भूमि बंदोबस्ती नियमावली 2014 दीघा आशियाना रोड के पूरब का पूरा 600 एकड़ जब बदोबस्ती का था तो सी.आर.पी.एफ.को व्यावसायिक दर पर देने का कारण समझ से परे है।

2014 में इस अधिग्रहण के खिलाफ सी.डब्लू.जे.सी 19777/14 उच्च न्यायालय में सुनवाई के लिए 5.2. 18 के आदेश से स्वीकृत कर लिया गया। बाद में 6.2.18 से भूमि अधिग्रहण कानून के मामलों पर सुनवाई पर रोक लगा दी गई जिसपर 5 महीने पहले से सुनवाई प्रारंभ हुई है। इसी बीच अंचलाधिकारी पटना के द्वारा लोकभूमि पर अतिक्रमण का एक मामला प्रारंभ किया गया। इसमें 20.6.22 को निर्णय आया जिसके आधार पर नेपाली नगर के लोगों को 7 दिन के अंदर अपना आवास खाली कर अतिक्रमण हटा लेने का नोटिस दिया गया। उक्त समय में अनुपालन नहीं होने पर नोटिस में कहा गया कि प्रशासन बलपूर्वक सभी तरह के निर्माण को हटा देगा और संबंधित लोगों से हटाने का शुल्क वसूला जाएगा।

अंचलाधिकारी के आदेश के खिलाफ अगले प्राधिकार में जाने के लिए 30 दिनों की अवधि निर्धारित है। लेकिन इसका अनुपालन किये बिना 3.7.22 को 16 जेसीबी एवं हजारों पुलिस बल के साथ मकान तोड़ने की कार्रवाई की गई। यह कार्रवाई अंचलाधिकारी के बाद प्रथम प्राधिकार जिलाधिकारी होते हैं, तोड़ने की कार्रवाई उन्हीं के नेतृत्व में किया गया। 4.7.22 को उच्च न्यायालय ने सारी कार्रवाई को अवैध बताते हुए रोक लगा दी। इस मामले में जितनी गिरफ्तारियां हुई थीं उन्हें उच्च न्यायालय के आदेश पर रिहा कर दिया गया।

दरअसल यह पूरा मामला बिहार राज्य आवास बोर्ड के अधिकारियों, राजीवनगर थाने की पुलिस और भू माफियाओं की मिलीभगत का परिणाम है। इन्हीं के संरक्षण में राजीवनगर में जमीन की बंदरबांट और अवैध कब्जे का खेल चलता रहा है। ■

महाराष्ट्र में सत्ता पलट : क्या लोकतंत्र क्या सिद्धांत, सभी चित

अरविंद

महाराष्ट्र में सहज और सामान्य तरीके से चलती महाविकास आघाड़ी की सरकार का 'तख्तापलट' इस देश के राजनीतिक परिदृश्य के लिए नया नहीं है, लेकिन इस उथल-पुथल ने लोकतंत्र की बची-खुची मर्यादा और शर्म को खत्म कर दिया है। यों लोकतंत्र को अंगूठा दिखा कर सत्ता पर 'कब्जा' करने का यह अभियान पिछले कुछ सालों में कई राज्यों में कामयाबी से संचालित किया जा चुका है, लेकिन दलबदल के सहारे जिस तरह की 'नई परंपरा' चलन में आई है, उसके बाद अब यह कहना मुश्किल होगा कि इस देश में लोकतंत्र किसी शक्ल में बचा हुआ है। कभी साबित नहीं होगा कि महाराष्ट्र में शिवसेना में एकनाथ शिंदे के समर्थन में जिन विधायकों ने 'बगावत' की, उसकी अंतर्कथा क्या थी! जबकि इसके समांतर चारों ओर खुला आरोप था कि 'बागी' विधायकों को करोड़ों रुपए अदा कर एक तरह से खरीदा गया। अब चूंकि एकनाथ शिंदे भाजपा के समर्थन और विलासराव देशमुख के उप मुख्यमंत्रित्व में महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री हैं और सरकार ने कामकाज शुरू कर दिया है, इसलिए तकनीकी बाध्यता यह है कि लोकतंत्र के सिद्धांतों के तहत इस सरकार को सार्वजनिक वैधता प्राप्त होगी। लेकिन क्या इतने ही दावे के साथ इसे लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों के तहत स्वीकार किया जा सकेगा?

क्या यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि एकनाथ शिंदे सहित उनके गुट में गए विधायकों के भीतर किसी नैतिकता और राजनीतिक आदर्शों के सिद्धांत ने जोर मारा और उन्होंने उद्धव ठाकरे की सरकार में इसका कोई हल नहीं देख कर 'बगावत' का रास्ता अख्तियार किया? अगर ऐसा था तो 'बागी' सभी विधायकों को कभी सूरत में तो कभी गुवाहाटी में छिपने के लिए पर्दा क्यों तलाशना पड़ा? सिद्धांतों की राजनीति के तहत सामने आया मतभेद अपने छिपने के लिए इस तरह के पर्दों की तलाश नहीं करता है। इसलिए स्वाभाविक ही ऐसे तमाम आरोप सामने आये कि शिंदे गुट के विधायकों की भाजपा के साथ मिलीभगत थी, जिसमें सिद्धांत और लोकतंत्र जैसे मूल्यों के लिए कोई जगह नहीं थी। इस आशंका को ज्यादा बल इससे मिला कि एक ओर उद्धव ठाकरे और उनके समर्थक नेता मुंबई आकर उन्हें बात करके मसले को सुलझाने की बात करते रहे, दूसरी ओर एकनाथ शिंदे अपने गुट के साथ किसी फैसले तक पहुंच चुके थे।

कुछ ही दिनों में सब साफ हो गया जब सरकार बनने की नौबत आई और एकनाथ शिंदे के मुख्यमंत्रित्व में सरकार बनी, जिसमें विलासराव देशमुख ने उप-मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। यहीं यह सवाल उभरा कि इस समूची 'बगावत-कथा' के बावजूद मुख्यमंत्री पद पर रह चुके देशमुख को उप-मुख्यमंत्री क्यों बनाया गया! हालांकि ऐसी खबरें भी आईं कि देशमुख ने पार्टी में उच्च स्तर की ओर से आने वाले दबाव के बाद उप-मुख्यमंत्री बनना कबूल किया, लेकिन राजनीति में पद के प्रतीक महत्त्व की अपनी हैसियत होती है। इसलिए विलासराव देशमुख का उप-मुख्यमंत्री बनना एक अजूबे की तरह देखा गया।

इस समूचे प्रसंग में यह ध्यान रखने वाली बात है कि राजनीति में सत्ता की अहमियत को जो समझते हैं, वे किसी भी तरह इसके सूत्रों को अपने हाथ में रखने के लिए सब कुछ करते हैं। खासतौर पर भारत की राजनीति में यह कोई नई प्रवृत्ति नहीं रही है, लेकिन हाल के वर्षों में इसकी मुखर अभिव्यक्ति हुई है, बिना किसी नैतिक बाधा के। वह मध्यप्रदेश हो, कर्नाटक हो या महाराष्ट्र, भाजपा ने सिर्फ इस बात का खयाल रखा कि सत्ता सीधे उसके हाथ आये या सत्ता की चाबी, उसे बाकी किसी और बात की फिक्र नहीं।

महाराष्ट्र में नई सरकार अब कैसे काम करेगी, इसे सरकार गठन के बाद सामने आये दो वीडियो से समझा जा सकता है, जिसमें एकनाथ शिंदे से पूछे गए सवाल का जवाब विलासराव देशमुख देते हैं, वह भी एकनाथ शिंदे के सामने से माइक खींच कर। दूसरी जगह किसी सभा में दर्शकों को अभिवादन करने के लिए एकनाथ शिंदे कुर्सी पर से उठने के लिए विलासराव देशमुख से पूछते हैं। कोई इसे भलमनसाहत, भोलापन और सहजता के तौर पर देख सकता है, लेकिन कई बार परिस्थितियां कुछ खास दृश्यों को वास्तविकता को प्रतीक के तौर पर चिह्नित करती हैं।

महाविकास आघाड़ी की सरकार ने शिवसेना की मौजूदगी के बावजूद महाराष्ट्र में धर्मनिरपेक्षता की नीति पर सरकार चलाई और इसमें उसे कामयाबी भी मिली। इससे शिवसेना के अतीत का चेहरा भी बदला कि वह सिर्फ कट्टर हिंदुत्व की राजनीति करती है, जिसमें अन्य अल्पसंख्यक समुदायों के लिए कोई जगह नहीं है। राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी और कांग्रेस के साथ शिवसेना के तालमेल को विरोधाभासी सहयोग माना जा रहा था, लेकिन पिछले ढाई सालों के दौरान शिवसेना के नेतृत्व वाली महाविकास आघाडी सरकार ने राज्य में एक तरह से समावेशी सरकार चलाई, जिसमें सभी तबकों को अपना चेहरा नजर आ रहा था। राज्य में जनकल्याण के दूसरे मोर्चे भी लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों का प्रतिरूप लग रहे थे। कामकाज का रिकॉर्ड बेहतर रहा।

लेकिन प्रत्यक्ष तौर पर हिंदुत्व का प्रतिनिधित्व करने का हवाला देकर जिस तरह एकनाथ शिंदे और उनके गुट ने 'बगावत' की और अब भाजपा के सहारे से नई सरकार बनी है, उसमें यह देखना बाकी रहेगा कि अब वहां शासन का स्वरूप सामाजिक राजनीति के स्तर पर कैसा रहेगा। महाराष्ट्र की सरकार एक बार फिर भाजपा के परोक्ष नियंत्रण से संचालित होगी और मौजूदा दौर में राजनीति ने जो शक्ल ले ली है, उसमें विपक्ष की राजनीति के सामने सिर्फ आशंकाएं हैं। महाराष्ट्र में महाविकास आघाडी और उसमें शामिल पार्टियों ने भाजपा की राजनीतिक फितरत का अंदाजा नहीं लगाया और अपने आसपास ऐसा जाल फैलाने दिया, जिसने आखिरकार उनके राजनीति के मैदान से बाहर कर देने की ही भूमिका बना दी है। जहां सामना नहीं होता है, वहां हार पहले से तय होती है। मौजूदा दौर में राजनीति सिर्फ रणनीति का खेल है। इसमें जो चूका, वह मैदान से बाहर होगा। महाराष्ट्र का ताजा उथल-पुथल तमाम गैर भाजपाई दलों, खासकर सामाजिक न्याय की राजनीति करने वाले क्षेत्रीय दलों के लिए एक चेतावनी है कि वे आने वाले वक्त में मैदान में खुद को कायम रखने की राजनीति चुनते हैं या दुनिया की नई व्यवस्था में लुप्त हो जाने का रास्ता अख्तियार करते हैं! ■

द्रौपदी मुर्मू : हिंदू राष्ट्र एजेंडे का विस्तार

गोल्डी एम जार्ज

द्रौपदी मुर्मू भारत की 15 वीं राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित हो गई। 21 तारीख को संसद में हुई मतगणना में उन्हें 6,76,8030 वोट (64 .03%) मिले। विपक्ष के यशवंत सिन्हा को 3,80,177 वोट (35.97%) मिले। वह देश की दूसरी महिला राष्ट्रपति हुई हैं। वह सबसे कम उम्र में राष्ट्रपति (64 वर्ष 1 माह 6 दिन) बनी हैं। इनसे पहले नीलम संजीव रेड्डी (64 साल 2 माह 6 दिन) इस पद पर पहुंचे थे। वर्तमान राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद का कार्यकाल 24 जुलाई को खत्म हो जाएगा। उसके बाद द्रौपदी इस पद पर आसीन होंगी।

राष्ट्रपति उम्मीदवारी की घोषणा के साथ ही उड़ीसा के मयूरभंज में एक शिवमंदिर में मुर्मू द्वारा झाड़ू लगाते हुए एक वीडियो वायरल हो गया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रपति जैसे महत्वपूर्ण पद के लिए द्रौपदी मुर्मू का चयन केवल प्रतिनिधित्व का प्रतीक भर नहीं है, बल्कि यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की मूल राजनीतिक और भारत को हिंदू राष्ट्र घोषणा करने की परियोजना की साफ-साफ उद्घोषणा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आरएसएस-भाजपा द्वारा द्रौपदी मुर्मू को उनके आदिवासी पहचान के अलावा उन्हें किस तरह जल, जंगल, जमीन, संसाधन इत्यादि पर अधिकारों को लेकर आदिवासी-मूलनिवासियों के मूल आंदोलन निरस्त करने में उपयोग किया जाएगा, इसकी संभावना साफ-साफ दिखाई देती है। वैसे भी इन संसाधनों को कॉरपोरेट के हाथों में सौंपने के खिलाफ यदि कोई समुदाय आड़ में है, तो वह है आदिवासी। यही वजह है कि झारखंड, उड़िसा और छत्तीसगढ़ में कई दशकों से इन मुद्दों पर जबरदस्त आंदोलन चलता रहा है। यह भी स्पष्ट है कि वर्त्तमान में आरएसएस द्वारा संचालित जनजाति सुरक्षा मंच जो ईसाइयत स्वीकार कर चुके आदिवासियों के खिलाफ डिलिस्टिंग के आंदोलन को तूल दे रही है, उसके लिए एक ऐसे व्यक्तित्व का सर्वोच्च संवैधानिक पद पर रहना भी जरूरी है, जो स्वयं उसी समुदाय से ताल्लुकात रखता हो।

यह सच है कि द्रौपदी मुर्मू आदिवासी समुदाय से आती हैं। आदिवासी समुदायों के बीच चल रहे तमाम संसाधन आधारित बहसों के बीच एक तरफ भाजपा इन समुदायों के बीच अपने सामाजिक आधार को व्यापक बनाने की कोशिश कर रही है। दूसरी ओर आदिवासी संगठनों लगभग दो दशकों से आदिवासियों के लिए अलग धर्म कोड का पुरजोर मांग कर रहे हैं। इसे हिंदूवादी संगठन अपने लिए खतरा मान रहे थे। उदाहरण से झारखंड और झारखंडी आदिवासियों ने अपने लिए अलग 'सरना धर्म कोड' को शामिल करने की मांग की है। इसी तरह अन्य राज्यों में भी आदिवासी धर्म कोड की बात उठी है। झारखंड के पूर्व मुख्यमंत्री शिबू सोरेन और वर्तमान मुख्यमंत्री हेमंत सोरेन ने खुलकर इस मांग का समर्थन किया है। हाल ही के वर्षों में हेमंत सोरेन ने कई बार दृढ़ता के साथ दावा किया है कि 'आदिवासी कभी हिंदू न थे, और न होंगे।' इस कथन का भाजपा पुरजोर विरोध करती आ रही है। इस मामले में अंतरराष्ट्रीय समुदाय भी खामोश नहीं है। ऐसी परिस्थिति दुनिया के अनेक देशों के आदिवासी-मूलनिवासियों के साथ भी है। उनमे से अधिकतर देशों में वहां की सरकारों ने इन मांगों को स्वीकार भी कर लिया है। इस मसले पर

देवघर स्थित एक शिव मंदिर में झाड़ू लगाती द्रौपदी मुर्मू

अन्तरराष्ट्रीय मूलनिवासी संगठन और संयुक्त राष्ट्र के कई संगठनों ने भी अपना समर्थन जताया है। इन तमाम कारणों से इस खतरे को कमजोर करना बहुत जरूरी है, जिसके बिना हिंदू राष्ट्र की घोषणा करना असंभव है, क्योंकि ऐसा करने से विश्व स्तर पर भारत का बड़ा विरोध होगा।

यानी जल, जंगल, जमीन, खनिज, संसाधन को कारपोरेट घरानों को देना, डिलिस्टिंग के द्वारा आदिवासियों की जनसंख्या घटाना, आदिवासी इलाकों को सामान्य घोषित करना, इन इलाकों में चुनाव के माध्यम से आदिवासियों की जगह गैर-आदिवासी यानी कोई ऊंची जाति के उम्मीदवार को खड़ा करना, आदिवासियों को देश के हिंदू समाज के अनुसार वश में करना और भारत को हिंदू राष्ट्र घोषित करना; यह सब इस समुचित प्रोजेक्ट का व्यापक हिस्सा है। आदिवासियों को हिंदुत्व के व्यापक प्रोजेक्ट में शामिल करना इन तमाम कारणों से अनिवार्य है और द्रौपदी मुर्मू जो मंदिर में झाड़ू लगाने वाली वीडियो में दिख रही हैं, उसका उपयोग भाजपा सरकार आदिवासियों को भ्रम में डालने के लिए कर सकती है।

एक स्वच्छ जनतंत्र में शीर्ष संवैधानिक पदों पर बैठने वाले व्यक्ति एक दलित, आदिवासी, पिछड़ा, मुसलमान या ईसाई हो या नहीं, इसका बहुत अधिक महत्व नहीं होता। लेकिन भारतीय समाज, जिसमें नाना प्रकार की विविधताओं के अलावा वर्चस्ववाद अहम है, इसका महत्व बढ़ जाता है कि शीर्ष पर बैठ कौन रहा है। यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि यह एक बड़ी रणनीति का अहम हिस्सा है कि इसमें ऐसे समुदाय के लोगों के नाम को उछाला जाए जिसके बलबूते पर आगे की योजना को कारगर रूप से कार्यान्वयन कर पाए।

संघ परिवार के द्वारा संचालित केंद्र की भाजपा सरकार दुनिया को ऐसा महसूस करवाना चाहती है कि वे भारत के वंचित, शोषित, पीड़ित और हाशिए के लोगों के सबसे बड़े हितैषी हैं। जबकि सच इसके बिल्कुल विपरीत है। इस संदर्भ में एक और बात यहां ध्यान रखना जरूरी है। राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद अपनी पत्नी के साथ 18 मार्च, 2018 को

उड़िसा के पुरी जगन्नाथ मंदिर गए थे। वे जब गर्भगृह के रास्ते में थे, तब दलित होने की वजह से कुछ पंडों ने उनका रास्ता रोका और कुछ ने उनकी पत्नी के साथ धक्का-मुक्की भी की। पंडों की इस हरकत पर राष्ट्रपति भवन ने कड़ी आपत्ति जताते हुए अगले दिन 19 मार्च को पुरी के ज़िला अधिकारी अरविंद अग्रवाल को पत्र भेजा। इसी तरह राष्ट्रपति 15 मई, 2018 को राजस्थान के पुष्कर में स्थित ब्रह्मा मंदिर गए थे। वहां भी राष्ट्रपति को मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया गया जिसके चलते उन्होंने मंदिर की सीढ़ियों पर पूजा की, इस घटना का आरएसएस, या कोई अन्य हिंदू संगठन ने कोई विरोध नहीं किया। इसमें कोई दो मत नहीं है कि यह सब दलित होने की वजह से ही होता चला और सरकार और उसके तंत्र की भी इसमें मौन हामी रही है, अन्यथा इस देश के प्रथम नागरिक को मंदिर प्रवेश करने से रोकने की हिम्मत किसी को कैसे हो सकती है? शायद यही कारण हैं कि द्रौपदी मुर्मू का मंदिर में झाड़ू लगाने वाला वीडियो सबसे पहले वायरल हुआ ताकि लोग ऐसा महसूस करें कि हिंदू धर्म को कंधे में लेकर चलनेवाली आदिवासी महिला होंगी भारत की अगली राष्ट्रपति।

भारत में ईसाई मिशनरियों का काम 18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी के आरंभिक वर्ष में शुरू हुआ। बावजूद इसके आदिवासी बहुल राज्य जैसे झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़िसा में इनकी संख्या बहुत कम है। लेकिन संघ परिवार ने तो धर्मांतरण को रोकने के साथ-साथ हिंदू राष्ट्र की घोषणा को एक मिशन की तरह ले लिया है। और इसके लिए तमाम पैंतरा भी खेला जा रहा है। आरंभ में कोशिश भी यह रही है कि ईसाई मिशनरियों के समान्तर शिक्षण और स्वास्थ्य की सुविधा को बनाये रखें। तमाम प्रयासों के बावजूद वनवासी कल्याण आश्रम, मिशनरी स्कूल या कॉलेज के आसपास भी नहीं भटक सका। यही हाल आरएसएस के द्वारा आरंभ किये गए, स्वास्थ्य सेवाओं का भी रहा है। तब फिर धर्म, संस्कृति, परंपरा, इत्यादि का सवाल भी एक के बाद एक सामने आने लगा, जिसके आधार पर हिंदुत्व को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए गए। प्रोफेसर बद्री नारायण के मुताबिक आदिवासी क्षेत्रों में हिन्दुओं और आदिवासियों के बीच एक तालमेल बनाने के वास्ते आदिवासी देवी-देवताओं को हिंदू मंदिरों के अंदर प्रतिष्ठित करते देखा है। हाल के दशक में हिंदू संगठनों द्वारा चर्चों और आदिवासियों के बीच काम करने वाले मिशनरियों के खिलाफ बेलगाम हिंसा में बढ़ोतरी हुई, विशेषकर आदिवासी समुदायों से ताल्लुकात रखनेवालों के खिलाफ। लेकिन अब यह मुद्दा ही नहीं बनेगा क्योंकि जब राष्ट्रपति भवन में एक संथाल हिंदू आदिवासी महिला तमाम अंतर्द्वंद्व को बिना उभारे संभाल लेगी तब हिंदुत्व को साकार करना आरएसएस के लिए बहुत हद तक संभव हो जाएगा।

बहरहाल, यह कोई पहली मर्तबा नहीं है कि आरएसएस ने द्रौपदी मुर्मू जैसे उम्मीदवार पर दांव खेला हो। जब वाजपेयी प्रधानमंत्री रहे, तब भी भाजपा ने अपने धर्मनिरपेक्ष होने का संकेत देते हुए अब्दुल कलाम को राष्ट्रपति के रूप में खड़ा किया। इसी तरह वर्तमान राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद भी भाजपा की तमाम रणनीतिक योजना में सही बैठे। एक था मुसलमान और दूसरा दलित दोनों आंकड़ों के गणित में सटीक बैठा। अब इस गठजोड़ में बचे आदिवासी। यदि उसमे महिला जुड़ जाए तो फिर सोने पे सुहागा होगा। इस तरह एक तीर में दर्जनों पक्षी को गिराने की उत्तम योजना। सांकेतिकता की राजनीति के मामले में आरएसएस और भाजपा से आज कोई और आगे नहीं बढ़ पाया है। अब शीघ्र ही हिंदुत्व ब्रिगेड का एक बड़ा बयान होगा कि वह हिंदू जनजातियों को सत्ता संरचनाओं में समायोजित करने के लिए तैयार हैं। परंतु आनेवाली पीढ़ी इस इतिहास को भी कभी नहीं भूलेगी कि इस ब्राह्मणवादी समाज ने एक दलित वर्ग से आनेवाले राष्ट्रपति को मंदिर प्रवेश नहीं करने दिया तो दूसरी मंदिर में झाड़ू लगा रही थीं। ■

(फारवर्ड प्रेस के साभार)

जाति जनगणना

जातिवार जनगणना की जरूरत

मस्तराम कपूर

बीस साल पहले जब मंडल रिपोर्ट लागू होने पर देश भर में आत्मदाह और आगजनी का तूफान उठा था तो इन पंक्तियों के लेखक ने बुद्धिजीवियों का एक सरसरी सर्वेक्षण किया था यह जानने के लिए कि कौन मंडल समर्थक हैं और कौन मंडल विरोधी। तब पता चला था कि द्विज वर्णों के सभी बुद्धिजीवी करीब-करीब (एक-दो अपवाद सहित) मंडल विरोधी थे। लगभग यही स्थिति जातिवार जनगणना और विधान मंडल में महिलाओं के आरक्षण के संदर्भ में बनी है। महिला आरक्षण के समर्थक भी करीब-करीब सभी द्विज जातियों से हैं और जातिवार जनगणना का विरोध करने वाले भी।

महिला आरक्षण के संबंध में इन बुद्धिजीवियों का सरल तर्क यह है कि अगर नौकरियों आदि में आरक्षण संविधान सम्मत है तो संसद और विधानसभाओं में आरक्षण भी संविधान सम्मत है। वे यह देखना ही नहीं चाहते कि संसद और विधानसभाओं के आरक्षण (राजनीतिक आरक्षण) अंग्रेजों ने हमपर थोपे थे 'फूट डालो और राज करो' की नीति के तहत। इन आरक्षणों ने दो राष्ट्रों के सिद्धांत को जन्म दिया जिसके खिलाफ पूरे स्वाधीनता आंदोलन में लड़ाई लड़ी गई। महात्मा गांधी ने इनके विरोध में आमरण अनशन किया और इन्हीं के कारण (यानी दो राष्ट्रों के सिद्धांत के आधार पर) देश का बंटवारा हुआ था।

संविधान बनाते समय आरक्षणों को सर्वसम्मति से समाप्त किया गया, केवल अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए इन्हें 10 साल के लिए जारी रखा गया। इनके विपरीत नौकरियों आदि के आरक्षण (सामाजिक आरक्षण) हमने खुद अपनाये जाति-व्यवस्था के अन्यायों को दूर करने के लिए। आंखें बंद कर सिर्फ आरक्षण शब्द को लेकर चलने वाले बुद्धिजीवी दोनों प्रकार के आरक्षण के बीच स्पष्ट भेद और परस्पर विरोधी चरित्र को देखना ही नहीं चाहते और कुतर्क पर कुतर्क गढ़ते जाते हैं। ये कुतर्क तब और स्पष्ट हो जाते हैं जब राजनीतिक आरक्षणों की मांग करने वाले महिलाओं के लिए सामाजिक आरक्षण की मांग नहीं करते क्योंकि सामाजिक आरक्षण मिलने से उनके साथ पिछड़ा विशेषण जुड़ जाएगा।

अब ये बुद्धिजीवी जातिवार जनगणना के विचार के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। पिछले 60 सालों से उन्होंने लगातार इस विचार को दबाने की कोशिश की। कांग्रेस, भाजपा और वामपंथी पार्टियां, जो द्विज वर्चस्व वाली पार्टियां हैं, जातिवार जनगणना कराने से बचती रहीं, क्योंकि इससे जाति व्यवस्था के शोषण की असली तस्वीर सामने आती थी। यह बात सामने आती कि पंद्रह-सोलह प्रतिशत द्विज जातियां 90 फीसद से अधिक सत्ता-स्थानों पर कब्जा जमाए बैठी हैं। जवाहरलाल नेहरू से लेकर अटल बिहारी वाजपेयी तक सभी प्रधानमंत्रियों में जातिवार जनगणना न कराने का फैसला किया। बीच में देवेगौड़ा की सरकार ने जातिवार जनगणना का फैसला किया, लेकिन कांग्रेस ने उस सरकार को

गिरा दिया और बाद में बनी वाजपेयी सरकार ने पहला काम देवगौड़ा सरकार के फैसले को बदलने का किया। अब जब विद्वानों ने जोरदार तरीके से यह बात रखी कि जातिवार जनगणना के बगैर हमारे पास सही आंकड़े नहीं होंगे और हम गरीबी निवारण और जाति व्यवस्था के विनाश जैसे संवैधानिक कार्यक्रमों को ठीक से लागू नहीं कर सकते तो मनमोहन सिंह ने जातिवार जनगणना कराने का आश्वासन संसद में दिया, लेकिन इस पर द्विजवर्णीय बुद्धिजीवियों ने तलवार भांजना शुरू कर दिया है। जो लोग एक समय मंडल के विरोध में खड़े थे और महिला आरक्षण के हक में शहीद होने को तैयार हैं, अब जातिवार जनगणना के खिलाफ खम ठोकर अखाड़े में उतर पड़े हैं।

इनमें जो लोग राजनीतिक माहौल में बदलाव या न्यायालयों के बदलते रवैया के कारण सामाजिक न्याय के समर्थक हो गए थे वह भी महिला आरक्षण और जातिवार जनगणना के मुद्दे पर फिर से बिल्कुल बदल गये हैं। एक तर्क जो आमतौर पर अफसरी योग्यता वाले लोगों के मुंह से सुनने को मिल रहा है वही है जिसे कभी जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्तुत किया था। यह तर्क है कि क्या भारतीय रेल की यात्रा के समय हर जाति से उसकी जाति पूछी जाएगी? यह समाज विज्ञान की गंभीर प्रक्रिया और अनुसंधान का माखौल है । सरकारी विभागों और संस्थाओं में जो बुद्धिजीवी भरे हैं (हर बड़े पद पर बैठा व्यक्ति अपने को प्रभावशाली तो मानता ही है) उनकी दलीलें इस तरह की मिलेंगी जो या तो गंभीर विचार को मजाक में उड़ाएंगी या उसे व्यावहारिक रूप से नामुमकिन बताएंगी जैसे कि मंत्रिमंडल की बैठक में गृह मंत्रालय के नौकरशाहों ने अधिवक्ता के तर्क से जातिवार जनगणना के विचार को काटना चाहा था।

अगर आंकड़े दस साल में एक बार जमा करने और उनका वैज्ञानिक विश्लेषण, वर्गीकरण आदि करने में हमारा सरकारी तंत्र सक्षम नहीं है तो उसे सूचना प्रौद्योगिकी की क्रांति की डींग मारने का क्या हक है। सूचना प्रौद्योगिकी में अग्रणी होने का दावा करने वाला देश अगर अपनी जनसंख्या की पूरी प्रोफाइल तैयार नहीं कर सकता तो उसे हम क्या कहेंगे? हर नागरिक के चित्र और अंगुलियों के निशानों सहित सारी जानकारी तो इकट्ठी की जा सकती हैं, पर सदियों पुरानी बीमारी यानी जाति व्यवस्था की सभी चीजों को समझने के लिए आंकड़े इकट्ठा नहीं किए जा सकते। हम पुलिस-राज्य बनाने के लिए तैयार हैं मगर समता का समाज नहीं।

एक प्रसिद्ध बुद्धिजीवी भानु प्रताप मेहता ने जातिवार जनगणना के खिलाफ एक लेख (इंडियन एक्सप्रेस) लिखा, जिसमें उन्होंने इस विचार के खिलाफ आठ कारण गिनाये। इस लेख में जातिवार जनगणना के विरोधियों के सारे तर्क समाहित हैं। वे जातिवार जनगणना कराने के विचार को भयानक विपत्ति कहते हैं जो आधुनिक भारत की हर अच्छी चीज का शूद्रीकरण करती है, और अस्मिता की राजनीति की तानाशाही ही लादती है। उनका कहना है कि जातिवार जनगणना का विचार उन सब चीजों को उभारता है जिनके खिलाफ हमने लंबी लड़ाई लड़ी। बात काफी ईमानदारी से कही गई है। द्विज जातियों की सारी लड़ाई जाति व्यवस्था के शोषण पर पर्दा डालने की रही है और जातिवार जनगणना इसका पदार्फाश कर सकती है। एक तरफ सब प्राणियों के बीच वेदांती आत्मिक एकता और दूसरी तरफ छुआछूत की सीमा तक लौकिक भेदभाव इस पाखंड को बनाय रखने की कोशिश ही तो है हमारा ज्ञान साधना आडंबर। वे कहते हैं कि जाति जनगणना का मतलब है हम अपनी जाति से कभी बच नहीं सकेंगे। क्या कूड़े को दरी के नीचे सरकाने से उससे बचा जा सकता है?

हमारे समाज ने अब तक जाति की गंदगी को दरी के नीचे छिपाने का ही काम किया है। निन्यानवे प्रतिशत परिवार अब भी जन्म कुंडली के अनुसार जाति और गोत्र देख कर शादियां करते हैं, भले वे प्रगतिशीलता का मुखौटा पहने रहें। यह सही है कि जाति और धर्म आदि की हमारी पहचानें हमारी चुनी हुई नहीं हैं। बल्कि ये दिये गये तथ्य हैं। यह भी सही है कि हम इन से बच नहीं सकते लेकिन इसी लिए यह जरूरी है कि हम इनके दबावों को भलीभांति समझें और इन दबावों को अपने फैसलों पर हावी न होने दें। यह काम शुतुरमुर्ग की तरह आंख मूंद लेने से नहीं होगा।

वैसे संविधान ने जाति उन्मूलन का रास्ता दिखाया है और जातिवार जनगणना और आरक्षण व्यवस्था इसी उद्देश्य के लिए है बशर्ते कि हम पाखंड छोड़कर ईमानदारी से संविधान की व्यवस्था को लागू करें।

जो सचमुच जातिमुक्त होना चाहते हैं वे जनगणना में अपने को 'जाति-मुक्त' लिखवा सकते हैं। लेकिन सही मायनों में जाति-मुक्त होने के लिए भीतर छिपी गंदगी को धोना पड़ेगा और यह काम इतना आसान नहीं है। इस अन्याय के सारे आयामों को समझना पड़ेगा और उसके लिए आंकड़े जमा करने पड़ेंगे।

मेहता का कहना है कि दलित, पिछड़े वर्गों के सशक्तीकरण का एक भी कार्यक्रम ऐसा नहीं है जिसके लिए जातिवार जनगणना की जरूरत हो। वैसे जातिवार जनगणना का यह उद्देश्य है भी नहीं। इसका उद्देश्य तो ऊंची जातियों द्वारा छोटी जातियों के शोषण का पता लगाना है। लेकिन अगर सशक्तीकरण का मतलब अस्सी प्रतिशत लोगों को भिखमंगेपन के स्तर से ऊपर उठाना है तो उसके लिए जनता के विभिन्न तबकों की सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक स्थिति का पता लगाना पड़ेगा और यह काम जातिवार जनगणना से ही होगा। मेहता का यह कहना भी सही है कि जाति आधुनिक राज्य के वर्गीकरण से पहले की चीज है। इसीलिए हमारा कहना है कि जाति को खत्म किए बिना आधुनिक राज्य का निर्माण नहीं हो सकता।

जब तक आधुनिक राज्य की विभिन्न संस्थाओं पर कुछ द्विज जातियों का वर्चस्व बना हुआ है तब तक आधुनिक राज्य एक ढकोसला है। इसीलिए राज्य के हर विभाग और हर संस्था में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका में काम करने वालों की जातिगत पहचान कर जातीय असंतुलन को दूर करना पड़ेगा।

साठ साल के पसोपेश के बाद संविधान के एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की पूर्ति के लिए सही कदम उठाया जा रहा है। निहित स्वार्थ इसके खिलाफ एकजुट हो सकते हैं और इस प्रयास को विफल कर सकते हैं। जाति आधारित जनगणना का समर्थन करने वाले नेताओं को मिलकर प्रधानमंत्री के हाथ मजबूत करने चाहिए। अगर जातियों से संबंधित आंकड़े ठीक से इकट्ठा किए गए (यह काम फरवरी 2011 व्यक्तिशः गणना के समय आसानी से हो सकता है) तो हम आने वाले सौ पचास वर्षों में जाति व्यवस्था के उन्मूलन की उम्मीद कर सकते हैं।

हर जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नागरिक वर्गों को संविधान के अनुच्छेद 16 (4) के आरक्षण की परिधि से बाहर किया जा सकता है जिससे आरक्षण का लाभ उत्तरोत्तर निचले क्रम के लोगों को मिलता जाएगा और एक दिन सभी को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिल जाएगा, एक सीमा तक समता स्थापित हो जाएगी और जाति-व्यवस्था क्षीण हो जाएगी। यह हमारे पूर्वज संविधान निमार्ताओं का सपना है और इसे साकार करना हम सबका परम कर्तव्य होना चाहिए। इस सपने की हत्या जातिवार जनगणना की मांग करने वालों ने नहीं की, जैसा कि के सुब्रह्मण्यम (इंडियन एक्सप्रेस) कहते हैं, इस सपने की हत्या उन्होंने की जो जातिवार जनगणना को अब तक टालते रहे। ■

जोतीराव फुले जन्म दिवस पर

महात्मा जोतीराव फुले और किसान समस्या

सुरेश कुमार

हमारे यहां किसान दुर्दशा को लेकर राज्य संबंधी नीतियों और कारणों पर विचार तो किया जाता रहा है, लेकिन किसान समस्या पर बात करते समय सामाजिक और धार्मिक कारणों को बड़ी चलाकी से गोल कर दिया जाता है। प्रसिद्ध चिंतक और समतावादी विमर्श के विलक्षण सिद्धांतकार महात्मा जोतीराव फुले ने किसान दुर्दशा को धार्मिक और राज्य संबंधी कारणों के आइने में देखा था। जोतीराव फुले ने 19वीं सदी के आठवें दशक में 'किसान का कोड़ा'(1883) शीर्षक से बड़ी मारक किताब लिखकर किसानों की समस्या को बड़ी शिद्दत से उठाया था। उन्होंने किसानों की दुर्गति का के लिए जितना जिम्मेदार ब्रिटिश सरकारी की नीतियों को माना था, उतना ही पुरोहितवादी प्रथाओं को भी बताया था। उनका मत था कि ब्रिटिश सरकार की तरह ही पुरोहित भांति-भांति के धार्मिक और सामाजिक अनुष्ठानों के बहाने किसानों से कर वसूली का काम करते हैं, जिसके कारण किसान कंगाल और भूमि विहीन होते जा रहे हैं। वर्णधर्म के सिद्धांतकारों ने ऐसी रीतियां चला दी कि जिससे किसानों का कोई भी अनुष्ठान ब्राह्मणों और पुरोहितों के दखल के बिना पूरा नहीं होता था। इन अनुष्ठानों को कराने के लिये बहुत सारे किसान साहूकारों और जमींदारों से कर्ज लेकर पुरोहितों को दान और द्रव्य देना होता था जिससे शूद्र किसान कर्ज के बोझ तले दब जाते थे। जोतीराव फुले जोर देकर कहते हैं कि इन पुरोहितों और पोथाधारियों के अनुष्ठानों की वजह से किसान कंगाल और बदहाल होते जा रहे हैं। सन 1883 में फुले जी का कहना था कि गोदान और श्राद्ध अनुष्ठानों ने किसानों की आर्थिक स्थिति की कमर ही तोड़कर रख दी है। आगे चलकर सन 1936 में 'गोदान' की हकीकत को कथाकार प्रेमचन्द ने 'गोदान' उपन्यास में बड़ी शिद्दत से चित्रित किया। पुरोहितों की लूट-खशोट का सिलसिला सालों-साल तक चलता रहता था, जिससे किसानों का बड़ा आर्थिक नुकसान होता था। जोतीराव फुले का प्रबल दावा था कि पुरोहितों का अनुष्ठान और पाखंड शूद्र किसानों की आर्थिक बदहाली और दुर्दशा का जिम्मेदार है। इसलिए किसानों के हित में पुरोहितों के अनुष्ठान को एकदम बंद करवा देना चाहिए।

जोतीराव फुले किसानों की दुर्गति के राज्य संबंधी कारकों की पड़ताल करते हैं। इस संबंध में उनका मत था कि ब्रिटिश सरकार अपने गोरे और काले अफसरों की बातों को आंख मूंद कर विश्वास कर लेती है। जबकि गोरे और काले अफसर किसानों के हितैषी नहीं बल्कि खून चूसने वाले होते हैं। यह गोरे और काले उच्च अफसर किसानों की समस्या को उठाने के बजाय उस पर परदा डालने का काम करते हैं। इसका खामियाजा विचारे मेहनत कश किसानों को उठाना पड़ता है। यदि सरकार सचमुच में किसानों की हितैषी है और उनकी वास्तविक स्थिति का पता लगाना चाहती है, तो किसानों के बीच से ऐसे व्यक्ति का चुनाव करना चाहिये जो किसानों के दुख दर्द और उनकी पीड़ा को ठीक से समझता हो। महात्मा फुले ने ब्रिटिश सरकार से कहा कि गोरे और उच्च कुलीन अफसर विलासता की पूर्ति के लिये किसानों पर बेवजह के कर लगवा देते हैं। लोकल फंड के नाम पर किसानों से

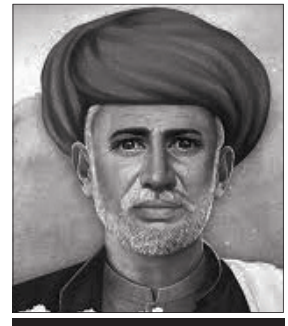

जोतीराव फुले (11 अप्रैल 1827-28 नवम्बर 1890)

लाखों रुपया वसूला जाता है लेकिन उस पैसे से किसानों की भलाई नहीं बल्कि गोरे और कुलीन अफसरों के भोग विलास पूरे होते हैं। यहां तक कि शूद्र किसानों को शिक्षित करने के नाम पर सरकार कर आदि लेती है वह किसानों के बच्चों की पढ़ाई पर खर्च नहीं किया जाता है। जोतीराव फुले ने शूद्र किसानों के हित में सरकार से आग्रह किया कि वह गोरे और काले कर्मचारियों को मोटी-मोटी तनख्वाह देने के लिये बेवजह शूद्रों पर लगान का बोझ नहीं लादना चाहिए। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से मांग की कि किसानों की भलाई के लिये ब्रिटिश सरकार को अपने अफसरों की तनख्वाह और पेंशन एकदम कम कर देनी चाहिये। इससे किसानों को कई तरह के टैक्स से निजात मिलेगी।

जोतीराव फुले ने 19वीं सदी के उतरार्द्ध में ही भापं लिया था कि समाचार पत्रों में बैठे उच्च कुलीन संपादक शूद्र हितैषी नहीं हैं और उन्हें किसानों का मुद्दा उठाने में जरा भी दिलचस्पी नहीं है। उनहोंने ब्रिटिश सरकार को सुझाव दिया कि शूद्रों को लेकर उच्च श्रेणी के लेखकों की गुदगुदाने वाली कलम पर विश्वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि पत्र-पकिाओं के संपादक शूद्र किसानों के संघर्ष को वास्तविकता के साथ पेश नहीं करते हैं। फुले का सुझाव था कि ब्रिटिश सरकार को अपने स्तर पर किसानों की जमीनी हकीकत जानने के बाद ही उन पर कर लगाने का फैसला करना चाहिए। उनकी मान्यता थी कि काले और गोरे कर्मचारियों ने ब्रिटिश सरकार की आंखों में धूल झोककर किसानों पर तरह-तरह से हर्जाना लगवाकर उनको इतना बदहाल और कंगाल कर दिया है कि गवर्नर साहब अपने दरबार में चाय पान के लिए उन्हें निमंत्रण देकर बुलाते तक नहीं हैं। जबकि शूद्र किसानों की मेहनत से ब्रिटिश सरकार अपने निजाम को हद से ज्यादा वेतन और पेंशन देती है। किसानों हाल इतना बदत्तर हैं कि उन्हें न तो पेट भर रोटी मिलती है और न ही तन ढकने के लिये कपड़ा। उनहोंने माना कि शूद्रों के प्रति सरकारी निजाम का रवैया अच्छा नहीं होता है, शूद्र किसानों की गर्दन पर हमेशा लगानों की तलवार लटकी रहती है। शूद्र किसानों को लेकर ब्रिटिश सरकार का निजाम वेवजह गब्बर बना हुआ है।

उन्नीसवी सदीं के उत्तर्राध में जोतीराव फुले ने किसानों के आधुनिकीकरण पर जोर दिया था। उनका मत था कि किसानों की दशा सुधारने के लिये कृषि को आधुनिक बनाना निहायत जरूरी है। उनहोंने ब्रिटिश सरकार से मांग की भारतीय किसानों को यूरोप के किसानों की तरह ही कृषि आधारित शिक्षा का प्रबंध किया जाए। यदि शूद्र का बच्चा किसी प्रकार की कारीगरी में दक्ष है, तो ऐसे बच्चे की परीक्षा लेकर

अंग्रेज सरकार उसे इग्लैंड के कृषि स्कूलों में सरकारी खजाने पर पढ़ाने की व्यवस्था करे। जोतीराव फुले ने ब्रिटिश सरकार से कहा कि यदि सरकार सच्चे मन से शूद्र किसानों का भला चाहती है तो उसे किसानों के लिये वार्षिक सम्मेलन अयोजित करवाना चाहिये। अच्छे किसानों को इनाम और उपाधियां देनी चाहिए। इससे किसानों का मनोबल बढ़ेगा और उन्हें समाज में सम्मान और प्रतिष्ठता प्राप्त होगी। किसानों के समुचित विकास के लिय जमींदारो और राजवाड़ों का नियंत्रण किसानों पर से तत्काल हटना चाहिये। राजवाड़े और जमींदार अपने भोग-विलास के लिये किसानों पर हाथी-बघ्घी तक का लगान वसूलते हैं।

फुले ने किसान मसले पर ब्रिटिश सरकार की बड़ी तीखी आलोचना की थी। उनका का मत था कि जब से भारत में अंग्रेजी राज कायम हुआ है, उस दिन से शूद्र किसानों को बड़ी भयंकर लगान से गुजरना पड़ रहा है। इस अंग्रेजी राज में किसानों के तंदुरुस्त और भार वाहक बैलों को मारना काटना शुरू कर दिया गया है। इससे किसानी में काम आने वाले तंदुरुस्त बैलों का अभाव हो गया है। इसका असर किसानों की खेती पर पड़ा है। उन्होंने सरकार को सुझाव दिया कि जब तक भारत के किसान यूरोपियन किसानों की तरह यंत्रों से खेती करने के लायक नहीं हो जाते हैं, तब तक फिरंगियों को हिंदुस्तान के बैल-गाय को काट कर नहीं खाना चाहिये। बल्कि फिरंगी लोगों को इनकी जगह पर यहां की भेड़ बकरियों का मांस खाना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि जोतीराव फुले ने बैलों के वध को रोकने की मांग का मसला धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि किसानों के नुकसान की वजह से उठाया था। उनहोंने ब्रिटिश सरकार से कहा कि बैलों का वध रोकने के लिये सरकार को कानून बनाना चाहिये, क्योंकि भारत में बैलों के बिना किसान न तो खेती कर सकते हैं और नहीं अपना समान बाजारों में लेकर बेच सकते हैं। किसानों की प्रगति के लिये जरूरी है कि ब्रिटिश सरकार उनके पशुधन के मांस से परहेज करे नहीं तो किसानों का कोड़ा जल्द ही ब्रिटिश सरकार की पीठ पर दस्तक देगा।

19वीं सदी के आठवें दशक में जोतीराव फुले ने बड़ी शिद्दत से किसानों की दावेदारी और मांग को लेकर लोगों की गोलबंदी करन में अहम भूमिका निभाई थी। इस महान विचारक ने किसान मुद्दे पर फिरंगी सरकार की नीतियों पर बड़ा मारक प्रहार किया उन्होंने सरकार और उसके निजाम़ की किसान हितैषी छवि की पोल खोल कर रख दी थी। उनका कहना था किसानों की दुर्दशा के लिए जितने जिम्मेदार फिरंगी हैं उतना ही जिम्मेदार उच्च श्रेणी की मानसिकता रखने वाला भारत का कुलीन तबका भी है। जोतीराव फुले उन्नीसवी सदीं के उत्तरार्द्ध में शूद्र-किसानों के हक में आवाज बुलंद की थी निश्चित है कि उसका असर ब्रिटिश सरकार और पुरोहितों पर हुआ होगा।

जोतीराव फुले उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशक में जिस समस्या के समाधान की बात कर रहे थे, 21वीं सदी में आकर भी किसानों की समस्या का कोई ठोस समाधान होता नहीं दिखाई दे रहा है। वर्तमान समय में जब किसान अपने हकों की दावेदारी के लिये राजधानी कूच करते हैं तो सरकारी निजाम के द्वारा बड़ी निर्ममता से उनके आंदोलन को कुचलने का प्रयास किया जाता है। आज भी शूद्र किसानों को उच्च श्रेणी की मानसिकत वाले बड़ी हिकारत भरी दृष्टि से देखते हैं। जोतीराव फुले के शब्दों में कहा जाए तो सरकारें किसानों को लेकर तभी ठोस कदम उठाएंगी, जब किसानों का कोड़ा सरकार और उसके निजाम की पीठ पर पड़ेगा। ■

(18वीं सदी के नवजागरण पर लेखक की गहरी पकड़ है। इलाहाबाद इनका ठौर है।)

जन्म दिन पर विशेष

अब्दुल कय्यूम अंसारीः सांप्रदायिक सद्भाव के प्रतीक

अफरोज आलम साहिल

अब्दुल कय्यूम अंसारी बिहार के सासाराम हाई स्कूल के छात्र थे। इसी दौरान मौलाना मुहम्मद अली जौहर और शौकत अली खिलाफत आंदोलन के सिलसिले में बिहार की यात्रा कर रहे थे, 1919 की इसी यात्रा के दौरान अब्दुल कय्यूम अंसारी को भी अली बंधुओं से मिलने का मौका मिला। वो मुहम्मद अली जौहर की मुहब्बत व शफकत से प्रभावित हुए। अब्दुल कय्यूम अंसारी उन दिनों ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाये जा रहे एक स्कूल के छात्र थे, इससे उन्होंने अलग होने का ऐलान किया और खुद एक स्कूल कायम कर डाला। इस स्कूल में वे बच्चे तालीम हासिल करने लगे, जो गांधीजी के ऐलान के बाद सरकारी स्कूलों से निकल गए थे और अब असहयोग आंदोलन का हिस्सा थे।

साल 1920 में इन्हें डेहरी ऑन सोन खिलाफत कमेटी का जेनरल सेक्रेट्री बनाया गया। उसी साल, यानी सितंबर 1920 में कलकत्ता में कांग्रेस का एक विशेष सत्र बुलाया गया था, तो यूथ डेलीगेट की हैसियत से उन्होंने अपने इलाके की नुमाइंदगी की। यहां उनकी मुलाकात मौलाना अबुल कलाम आजाद से भी हुई। महात्मा गांधी को भी अपनी आंखों से देखने का मौका मिला। गौरतलब है कि कांग्रेस के इसी स्पेशल सेशन में गांधीजी की पहल पर भारत को अंग्रेजों से आजाद कराने और तुर्की में खिलाफत की हिफाजत की खातिर असहयोग आंदोलन का ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया गया था।

अब्दुल कय्यूम अंसारी खिलाफत आंदोलन में इस कदर सक्रिय हो गए कि उन्हें इस आंदोलन में हिस्सा लेने की वजह से फरवरी 1922 में डेहरी ऑन सोन में गिरफ़्तार कर सासाराम जेल में डाल दिया गया। वह नवंबर तक जेल में रहे। इस सजा के बाद भी उनका हौसला कमजोर नहीं हुआ। जेल से बाहर निकलते ही वे फिर से सक्रिय हो गए और आगे भी सरकार विरोधी गतिविधियों में सबसे आगे बने रहे। दिसंबर 1922 में गया में कांग्रेस की बैठक में श्रोता के रूप में शरीक हुए। इस बैठक की अध्यक्षता चितरंजन दास कर रहे थे।

साल 1928 में कलकत्ता कॉलेज स्ट्रीट में साइमन कमीशन के विरोध में चल रहे छात्र आंदोलन में सबसे अधिक सक्रिय थे, इसमें उन्हें ब्रिटिश पुलिस के जुल्म का शिकार होना पड़ा था। उन्होंने 1937 में बिहार में 'बिहार जमीयतुल मोमिन' की स्थापना की। इस तरह देश की आजादी के लिए हमेशा सक्रिय रहे और हर आंदोलन में सबसे आगे नजर आये। 1938 में अब्दुल कय्यूम अंसारी सियासत में हिस्सा लेने के लिए पटना आ चुके थे। पटना के आलमगंज मुहल्ले के एक मकान में उन्होंने जमीयतुल मोमिन का दफ़्तर खोल दिया।

1946 के आखिर में बिहार दंगों के बाद उन्हें पुनर्वास विभाग का प्रभार सौंपा गया। इस दौरान अब्दुल कय्यूम अंसारी लगातार गांधी जी के संपर्क में रहे। इनका ज़िक्र उन दिनों गांधी जी द्वारा लिखे गए कई पत्रों में होता है। एक पत्र में गांधी जी इनसे नाराज नजर आते हैं। पुनर्वास

अब्दुल कय्यूम अंसारी (1 जलाई 1905- 15 जनवरी 1973)

के काम को जल्द से जल्द निपटाने के लिए अब्दुल कय्यूम अंसारी द्वारा तैयार की गई योजना के बारे में गांधी जी ने उनसे कई बार बातचीत भी की। बाद में अपने विचारों को टिप्पणी के रूप में उनके मार्गदर्शन के लिए लिखा। गांधी जी ने ये टिप्पणी बिहार छोड़ने से पहले 24 मई, 1947 को लिखी थी।

1946 में हुए बिहार विधान सभा चुनाव में रांची सह सिंहभूम मुहम्मडन ग्रामीण निर्वाचन क्षेत्र से पहली बार वे विधायक चुने गए और 14 अप्रैल 1946 को उन्हें श्री कृष्ण सिंह की मंत्रिपरिषद में कैबिनेट मंत्री बनाया गया। उस वक़्त वे सबसे कम उम्र के मंत्री थे। सच्चिदानंद सिन्हा, राजेन्द्र प्रसाद और श्री कृष्ण के साथ इनका भी नाम संविधान सभा के लिए बिहार के कांग्रेस उम्मीदवारों में शामिल था।

चम्पारण और शाहाबाद ज़िलों के नहर इलाकों में सरकार की तरफ से नहर शुल्क में इजाफा किया जाता रहा, इसको लेकर 1931 में इन दोनों ज़िलों में आन्दोलन चला, जिसमें अब्दुल कय्यूम अंसारी भी सक्रिय रहे। नगर शुल्क कम किए जाने को लेकर शाहाबाद में इसके लिए लिखे गए आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर करने वालों में अंसारी साहब भी शामिल थे। इतिहासकार डॉ. के.के. दत्त अपनी किताब में लिखते हैं, 'नहर शुल्क में कमी करने के लिए आंदोलन अगले साल भी जारी रहा, और शाहाबाद में नहर शुल्क में कमी के लिए याचिका पर हस्ताक्षर करने वाले प्रमुख स्थानीय कार्यकर्ता श्री कय्यूम अंसारी (बिहार के भावी मंत्री), श्री काशी नाथ (सिंचाई क्लर्क) और पंडित दूधनाथ पांडे (मणिपुर में रहने वाले एक सेवानिवृत्त पुलिस उपाधीक्षक) का नाम उल्लेखनीय है। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी की खबर पहुंचते ही डेहरी में हड़ताल करने में श्री अंसारी और काशी नाथ सफल रहे।' गौरतलब है कि इतिहासकार डॉ. के.के. दत्त ने ये बात पटना कमिश्नर की एक रिपोर्ट के आधार पर लिखी है, इस रिपोर्ट से अंदाजा होता है कि अंग्रेज 1931 में ही अंसारी साहब को बिहार का भावी मंत्री मानने लगे थे।

अब्दुल कय्यूम अंसारी को किसानों व मजदूरों के संघर्ष में काफी दिलचस्पी रही। डेहरी ऑन सोन में लगातार 30 सालों तक सेठ डालमिया और शान्ति प्रसाद जैन के खिलाफ मजदूरों की जितनी तहरीकें चली हैं, अंसारी साहब ने हर जमाने में उनकी मदद की। तहरीक चलाने वाले चाहे सोशलिस्ट हों, कम्युनिस्ट या चाहे कांग्रेसी हों। अंसारी साहब कम्यूनिस्ट पार्टी की खास तौर पर हर संभव मदद करते थे।

अंसारी साहब को दलित और पिछड़े हिन्दू तबका के लोग भी अपना नेता मानते थे। पुराने शाहाबाद ज़िले में त्रिवेणी संघ की सरगर्मियों में भी वो हिस्सा लेते थे। बिहार में बैकवर्ड क्लासेज फेडरेशन को जिन लोगों ने कायम किया, इनमें पहला नाम अंसारी साहब का था। 1948 में पटना के कांग्रेस मुख्यालय सदाकत आश्रम में एक दिन प्रदेश कमिटी की बैठक चल रही थी। विनोदानन्द झा (जो आगे चलकर बिहार के मुख्यमंत्री भी हुए) ने अचानक एक प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस के जो नेता बैकवर्ड क्लासेज फेडरेशन में हिस्सा लेते हैं, उन्हें आज से कांग्रेस से बाहर समझा जाए। शाह उमैर ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। इस बैठक में मौजूद अब्दुल कय्यूम अंसारी, वीरचन्द पटेल, रामलखन सिंह यादव, अब्दुल अहद मोहम्मद नूर वगैरह ने फौरन कांग्रेस से अपनी सदस्यता से इस्तीफा देने का ऐलान कर दिया। श्री बाबू (श्रीकृष्ण सिंह) ने मौके की नजाकत को समझते हुए बीच-बचाव के तुरंत बाद विनोदानंद झा से उनने प्रस्ताव को वापस करवाया।

अखिल भारतीय मोमिन कांफ्रेंस ने दो कौमी नजरिये (द्वि-राष्ट्र सिद्धांत) यानी पाकिस्तान बनने का खुलकर विरोध किया था। बिहार में अब्दुल कय्यूम अंसारी भी पाकिस्तान बनने के खिलाफ थे। अप्रैल 1940 के तीसरे सप्ताह में बिहार प्रांतीय मोमिन कांफ्रेंस की पहला अधिवेशन आयोजित की गई। इसकी अध्यक्षता अब्दुल कय्यूम अंसारी ने की थी। अंसारी साहब ने साफ लफ़्ज़ों में कहा कि विभाजन की समूची योजना बेतुकी, अव्यावहारिक और इस्लाम की सच्ची अवधारणा के खिलाफ है। उन्होंने कहा कि जो देश के टुकड़े करना चाहते हैं, वे देशद्रोही हैं। उन्होंने मुस्लिम लीग के इस दावे का खंडन किया कि सांस्कृतिक रूप से सभी मुसलमान समान हैं। उन्होंने सवाल किया कि भारत के मुसलमानों और अरब या तुर्की के मुसलमानों में सांस्कृतिक रूप से क्या समानता है? इसी तरह बंगाली मुसलमानों की उत्तर-पश्चिम सीमा के मुसलमानों से कोई सांस्कृतिक समानता नहीं है। इसके विपरित, बंगाल के मुसलमानों और बंगाल के हिंदुओं की संस्कृति समान है। उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि नस्लीय रूप से वे अधिक समान हैं। उनकी भाषा समान है, वे एक जैसे कपड़े पहनते हैं, एक जैसे रहते हैं और वे अधिकतर एक जैसे भोजन का आनंद लेते हैं।

बिहार प्रांतीय मोमिन कांफ्रेंस ने पाकिस्तान बन जाने की स्थिति में भारत में रह जाने वाले मुसलमानों के पवित्र स्थलों का मुद्दा भी उठाया। इसके अलावा यदि पाकिस्तान बन जाता है तो आर्थिक मामलों में मुसलमान प्रांतों को भारत पर (जो मुस्लिम लीग के अनुसार हिंदू भारत है) निर्भर रहना पड़ेगा, क्योंकि प्रमुख उद्योगों के लिए आवश्यक अधिकांश सामग्री जैसे लोहा, कोयला, अभ्रक धातु आदि भारत के क्षेत्र में रह जाएंगे। पाकिस्तान राष्ट्र के संसाधन इतने सीमित रह जाएंगे कि उनसे रक्षा और रेल आदि का खर्च उठाने में वह सक्षम नहीं हो पाएंगे। कांफ्रेंस ने इस बात पर जोर दिया कि पाकिस्तान की योजना मुसलमानों और इस्लाम के कामों को पूरा करने के लिए नुकसानदेह है। इसे सिर्फ उन पूंजीपति मुसलमानों के मकसद को पूरा करने के लिए तैयार किया गया है, जो मुसलमान जनता पर हावी रहना चाहते हैं और जो सिर्फ हिंदू-मुसलमान के बीच नफरत और परले दर्जे की सांप्रदायिकता पर ज़िंदा रह सकते हैं।

पाकिस्तान बनाने की योजना न सिर्फ अव्यावहारिक और देशभक्ति के खिलाफ है, बल्कि पूरी तरह से गैर-इस्लामी और अप्राकृतिक भी, क्योंकि भारत के विभिन्न प्रांतों की भौगोलिक स्थिति और हिंदुओं-मुसलमानों की आपस में घुली-मिली जनसंख्या योजना के खिलाफ

है, दोनों समुदाय सदियों से साथ-साथ रह रहे हैं और उनमें कई चीजें समान हैं।

अब्दुल कय्यूम अंसारी ने भारत के विभाजन से होने वाले भयानक नतीजे को पहले ही भांप लिया था। इसलिए वह खुलकर मुस्लिम लीग के खिलाफ हो गए। 1946 के चुनाव में उनकी रहनुमाई में मोमिन कांफ्रेंस एक सियासी पार्टी बनकर मैदान में जरूर आई, लेकिन इस बात का भी ध्यान रखा गया कि नेशनलिस्ट वोटों का बंटवारान हो। इसलिए अब्दुल कय्यूम अंसारी ने चुनाव में इंडियन नेशनल कांग्रेस के साथ सीटों का तालमेल और चुनावी समझौता भी किया। चुनाव के बाद जब श्री बाबू की रहनुमाई में सरकार बनने लगी और मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अब्दुल कय्यूम अंसारी को कैबिनेट में जगह देने के लिए ये शर्त लगाई कि वो पहले मोमिन कांफ्रेंस को कांग्रेस में एकीकृत करें और कांग्रेस की सदस्यता के इकरारनामे पर दस्तखत करें तो जनाब अंसारी और उस जमाने के मोमिन लीडरों ने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया। आखिर में कांग्रेसी लीडरों को अपनी ये शर्त हटानी पड़ी और मोमिन कांफ्रेंस में रहते हुए अब्दुल कय्यूम अंसारी कैबिनेट मिनिस्टर बनाये गए।

अब्दुल कय्यूम अंसारी और नूर साहब ने मिलकर श्री बाबू की सरकार से 500 बैकवर्ड मुस्लिम वेलफेयर मकतब और 12 सौ बुनकर सहयोग समिति को कायम करवाया। कॉलेज तक में सैकड़ों छात्रों की फीस माफ, तालीम और मेडिकल कॉलेजों वगैरह में मोमिनों के लिए अलग सीटों का कोटा रखवाया। अब्दुल कय्यूम अंसारी को अपने काम में शायद इसलिए भी बराबर कामयाबी मिलती रही कि सियासी कैरियर के शुरूआती दिनों से ही तमाम बड़े कौमी रहनुमाओं, खासकर पंडित जवाहरलाल नेहरू के लगातार करीब रहे। अब्दुल कय्यूम अंसारी के कांग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल होने के बाद मुस्लिम लीग के जरिए उन्हें मुसलमानों का दुश्मन कहा गया एवं उनसे मुसलमानों को सावधान रहने का आग्रह किया। 1940 में इंग्लैंड की लेबर पार्टी के मशहूर लीडर और पार्लियामेंट के मेम्बर सर स्टीफोर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान की सियासी हालत का जायजा लेने भारत आये। उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू से पूछा कि जिन्ना के मुकाबले में कौन ऐसा मुस्लिम लीडर है, जिसको जनता का सपोर्ट हो, कहते हैं, नेहरू जी ने क्रिस को तीन नाम बताये थे —खान अब्दुल गफ़्फार खां, अब्दुल कय्यूम अंसारी और मौलाना हुसैन अहमद मदनी। इसके बाद मिस्टर क्रिप्स ने अंसारी साहब को इलाहाबाद बुलाकर लम्बी गुफ़्तगू की थी। इस मुलाकात का ज़िक्र डॉ. इकबाल हुसैन ने भी अपनी आत्मकथा में किया है। वो लिखते हैं, क्रिप्स इलाहाबाद में आनंद भवन में रूका हुआ था। अब्दुल कय्यूम ने वहीं उससे मुलाकात की थी। क्रिप्स ने उनकी गुफ़्तगू का ज़िक्र अपने एक हिन्दुस्तानी दोस्त से किया था, जिससे मेरी मुलाकात थी। उन्होंने अब्दुल कय्यूम के मुत्तलिक क्रिप्स का तास्सुरात बयान करते हुए मुझसे कहा था कि क्रिप्स भले ही अब्दुल कय्यूम के राजनैतिक विचारों से सहमत नहीं था, लेकिन इनके अखलाक, खुलूस, संजीदगी, मतानत और तहजीब से बहुत प्रभावित हुआ था।

वह बंटवारे के बाद भारत में मुसलमानों के लिए सब कुछ इतना आसान नहीं था। 1946 के साम्प्रदायिक दंगों के ज़ख़्म गहरे थे। उनके अपने ही देश में उन्हें तरह-तरह की बातें कहीं जा रही थीं। इससे उनके अंदर अपने ही देश में अपने भविष्य के असुरक्षित और बेयकीनी का अहसास पैदा हुआ। ऐसे हालात में सबसे महत्वपूर्ण और जरूरी काम हाल के दिनों के दागों को साफ करना और मुसलमानों के अंदर अपनी जन्मभूमि के अंदर आबाद रहने के जज्बात को बढ़ाना था। डॉ. सैय्यद महमूद और अब्दुल कय्यूम अंसारी ने शाह उमैर और अहद नूर के साथ मिलकर मुसलमानों की टूटी हुई हिम्मत को बढ़ाने का बड़ा काम किया। मिस्टर कय्यूम अंसारी का लगातार राष्ट्रवादी रिकॉर्ड रहा है। मोमिन कांफ्रेंस व बिहार कैबिनेट में अपने रिलीफ पोर्टफोलियो के माध्यम से उन्होंने मुसलमानों के पिछड़े समूहों के हितों की सेवा की।

अंसारी साहब पहले भारतीय राष्ट्रवादी मुस्लिम लीडर थे, जिन्होंने अक्टूबर, 1947 के दौरान कश्मीर पर पाकिस्तानी आक्रमण की निंदा की और भारत के सच्चे नागरिक के रूप में इस तरह की आक्रामकता का सामना करने के लिए मुस्लिम जनता को जगाने के लिए कड़ी मेहनत की। उन्होंने कश्मीर के पाकिस्तानी कब्जे वाले क्षेत्रों की मुक्ति के लिए 1957 में 'इंडियन मुस्लिम यूथ कश्मीर फ्रंट' की भी स्थापना की। इसके बाद, उन्होंने सितंबर, 1948 के दौरान हैदराबाद में रजाकारों के भारत विरोधी विद्रोह में भारत सरकार का समर्थन करने के लिए भारतीय मुसलमानों को भी प्रोत्साहित किया।

अब्दुल कय्यूम अंसारी साहब ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा डेहरी ऑन सोन और सासाराम हाई स्कूल से हासिल करने के बाद आगे की शिक्षा अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, कलकत्ता यूनिवर्सिटी और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से हासिल की। डिग्री हासिल करने के बाद भी आप इल्मी व अदबी (साहित्यिक) सरगर्मियों से जुड़े रहे। साहित्य से गहरी दिलचस्पी रखने वाले अब्दुल कय्यूम अंसारी ने डेहरी ऑन सोन से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'अल-इस्लाह' का (1924 से 1927) तक संपादन किया। उसके बाद 1934 में मासिक 'मासावत' के संपादन की ज़िम्मेदारी अदा की। 1948 में सोहेल अजीमाबादी के साथ मिलकर इन्होंने दैनिक 'साथी' और 1952 में मासिक 'तहजीब' का पब्लिकेशन और एडिटिंग का कर्तव्य अंजाम दिया। डेहरी ऑन सोन से एक मासिक पत्रिका 'हुस्न व इश्क' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसका संपादन अब्दुल कय्यूम अंसारी और मौलाना अबू मुहम्मद ने साथ मिलकर किया था।

अब्दुल कय्यूम अंसारी अंजुमन-ए-तरक़्क़ी उर्दू से भी जुड़े हुए थे। 1940 से 1951 तक वे पटना यूनिवर्सिटी के सीनेट फेलो और 1952 में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के कोर्ट के मेम्बर रहे। उन्होंने हमेशा अल्पसंख्यक तबके के कल्याण और शैक्षिक हालात को बेहतर बनाने के लिए भी अपना संघर्ष जारी रखा। अब्दुल कय्यूम अंसारी की पैदाइश बिहार के रोहतास ज़िला में स्थित डेहरी ऑन सोन में 01 जुलाई 1905 को हुई। उनके पिता का नाम मौलवी अब्दुल हक और माता का नाम साफिया बेगम था। अब्दुल कय्यूम अंसारी राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिक सद्भाव के कट्टर समर्थक थे। अपने इन्हीं आदर्शों के साथ बिहार का ये महान नेता 18 जनवरी 1973 को इस नश्वर संसार को हमेशा के लिए अलविदा कहकर चला गया। ■

(बेतिया बिहार के रहने वाले लेखक की कई किताबें प्रकाशित हैं । 'जामिया और गांधी ' इनकी चर्चित पुस्तक है।)

गोदानः हिन्दी पट्टी का एक प्रतिनिधि उपन्यास

सिद्धार्थ रामू

उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया है। एक श्रेष्ठ उपन्यास से यह उम्मीद की जाती है कि वह अपने युग के नाभिकीय यथार्थ को सृजनात्मक तरीके से अभिव्यक्त करे। मार्क्स और एंगेल्स अपने मित्रों को सलाह दिया करते थे कि वे फ्रांस में पूंजीवाद के उदय को जानने समझने के लिए आर्थिक इतिहासकारों के उबाऊ ब्योरों के बजाय बाल्जाक के उपन्यास पढ़ें। मार्क्स ने यह भी लिखा है कि फ्रांस के इतिहास को उन्होंने, जितना बाल्जाक के उपन्यासों से समझा, उतना फ्रांसीसी इतिहासकारों की किताबों से नहीं समझ पाये।

नाभिकीय यथार्थ को अभिव्यक्ति करने वाले विश्व साहित्य के उपन्यासों में से एक प्रेमचंद (31 जुलाई 1880-8 अक्टूबर1936)का गोदान भी है। इस उपन्यास ने इस तथ्य को सशक्त तरीके से रेखांकित किया कि भारतीय समाज के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंधों की धुरी वर्ण-जाति व्यवस्था है और उच्च जातियों के हाथ में ही सामाजिक, धार्मिक और स्थानीय स्तर पर आर्थिक सत्ता है, भले ही राजनीतिक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में हो। स्वराज के नाम पर उच्च जातियों का गठजोड़ ब्रिटिश शासन से राजनीतिक सत्ता भी हासिल करने की कोशिश कर रहा है। हां यह सच है कि जिस सामाजिक यथार्थ को प्रेमचंद ने गोदान में 1936 में अभिव्यक्ति दी, उसे डॉ. आंबेडकर ने अपने वैचारिक लेखन में 1917 से ही रेखांकित करना शुरू दिया था। यह संयोग है कि वर्ण-जाति व्यवस्था ही भारतीय समाज की धुरी है, इसे रेखांकित करने वाली दो अलग-अलग विधाओं की कृतियां- 'जाति का विनाश' और 'गोदान'- एक ही वर्ष 1936 में ही प्रकाशित होती हैं।

प्रेमचंद गोदान में पुरजोर तरीके से यह रेखांकित कर रहे हैं कि उच्च जातियां जहां पिछड़ी एवं दलित जातियों के श्रम पर पलने वाली अनुत्पादक एवं परजीवी जातियां हैं, वहीं पिछड़ी एवं दलित जातियां ही उत्पादक एवं मेहनतकश जातियां हैं। जिसका प्रमाण वे गोदान के प्रतिनिधि चरित्र होरी महतो और उनके परिवार के हाड़तोड परिश्रम के माध्यम से देते हैं।

गोदान उपन्यास की शुरूआत इन वाक्यों से होती है- 'होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी दे कर अपनी स्त्री धनिया से कहा- गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूं। जरा मेरी लाठी दे दे। धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी।' कुछ पृष्ठों बाद प्रेमचंद होरी के बेटे गोबर एवं उसके बेटियों के कठिन श्रम की चर्चा इन शब्दों में करते हैं-'होरी अपने गांव के समीप पहुंचा, तो देखा, अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियां भी उसके साथ काम कर रही हैं। लू चल रहीं थी, बगुले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था। जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो। यह सब अभी तक खेत में क्यों हैं? क्या काम के पीछे सब जान देने पर तुले हुए हैं? वह खेत की ओर चला और दूर ही से चिल्ला कर बोला- आता क्यों नहीं गोबर, क्या काम ही करता रहेगा? दोपहर ढल गई, कुछ सूझता है कि नहीं?' गोदान में बिना अपवाद के सभी उच्च जातीय पात्र अनुत्पादक एवं

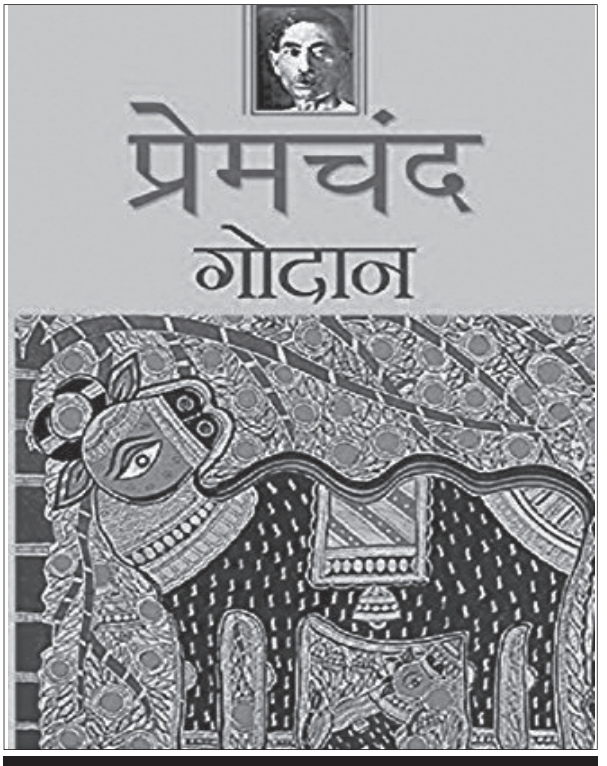

प्रमेचंद (31 जुलाई 1880 - 8 अक्टूबर 1936)

परजीवी हैं और पिछड़ी एवं दलित जातियों के पात्र उत्पादक एवं मेहनतकश हैं, लेकिन परजीवी जातियों के लोग सुख-सुविधा एवं अय्याशी के साथ जीवन जी रहे हैं, तो मेहनतकश जातियों के लोग गरीबी एवं तंगी में जीवन बिता रहे हैं। इसका कारण भी रेखांकित करने से प्रेमचंद नहीं चूकते। पूरे कथा विन्यास के माध्यम से वह यह बता देते हैं कि मेहनतकश पिछड़ी एवं दलित जातियों के श्रम के फल को ऐन-केन प्रकारेण उच्च जातियां हड़प लेती हैं, जिसका एक हिस्सा ब्रिटिश साम्राज्य को भी जाता है।

गोदान का लेखक अपने पात्रों के व्यवहार एवं आचरण के माध्यम से यह भी बता देता है कि अनुत्पादक एवं परजीवी जातियां क्रूर, निर्मम एवं हृदयहीन हैं। ढोंग-पाखंड एवं षड्यंत्र उनका बुनियादी चरित्र है। यह सब कुछ हमें उच्च जातियों के प्रतिनिधि पात्रों पंडित दातादीन, झिंगुरी सिंह, पटेश्वरी लाल, राय साहब, ओंकारनाथ शुक्ल और तंखा के चरित्र में देखने को मिलता है। इसके विपरीत मेहनतकश जातियों के प्रतिनिधि पात्र होरी, धनिया, भोला, सिलिया सभी में करुणा एवं मानवीयता कूट-कूट कर भरी है।

गोदान की सारी कथा बेलारी और सेमरी गांव के इर्द-गिर्द घूमती है। भले ही 1936 में जब गोदान लिखा गया, उस समय भारत में ब्रिटिश

सत्ता थी,लेकिन प्रेमचंद अपनी खुली आंखों से देख रहे हैं और गोदान के पाठकों को दिखा रहें हैं कि बेलारी और सेमरी गांवों पर उच्च जातियों के लोगों का ही नियंत्रण है, उन्हीं के हाथों में सारी सत्ता है और जिनके रहमों-करम पर पिछड़ी एवं दलित जातियों के लोग हैं। होरी के गांव बेलारी के माई-बाप पंडित दातादीन, झिंगुरी सिंह, पटेश्वरी लाल और सहुआईन हैं। पंडित दातादीन के हाथ में धार्मिक सत्ता तो है ही, खेती के मालिक हैं और सूदखोरी भी करते हैं। झिंगुरी सिंह बड़े खेतिहर हैं। पटेश्वरी लाल पटवारी हैं। सहुआईन दुकान चलाने के साथ सूद पर पैसे भी बांटती हैं। ब्राह्मण दातादीन, ठाकुर झिंगुरी सिंह और सरकारी कारकुन(पटवारी)कायस्थ पटेश्वरीलाल के शोषण-उत्पीड़न और षड्यंत्रों का शिकार होरी, उसका परिवार और पूरा गांव है। पटेश्वरीलाल के चरित्र का वर्णन प्रेमचंद इन शब्दों में करते है- 'पटवारी होने के नाते बेगार में खेत जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक-दूसरे से लड़वाकर रकमें मारते थे। सारा गांव उनसे कांपता था।' कमोवेश यही चरित्र पंडित दातादीन और झिंगुरी सिंह का भी है।

बेलारी से पांच मील दूर सेमरी गांव में जमींदार राय साहब रहते हैं, एक तरफ वे जमींदार हैं, लगान वसूलते हैं, बेगार कराते हैं और अन्य कई तरह से असामियों से पैसे ऐंठते हैं तो, दूसरी तरफ गांधी जी के स्वराज के संघर्ष में भी शामिल हैं, एकाध बार जेल भी हो आये हैं। उनके संगी-साथी पत्रकार ओंकारनाथ शुक्ल, वकील श्याम बिहारी तंखा और प्रोफेसर मेहता हैं। इनके नामों से ही पता चल जाता है कि ये उच्च जातियों के लोग हैं। इनका चरित्र-चित्रण प्रेमचंद इन व्यंगात्मक शब्दों में करतें- 'मोटर सिंह-द्वार के सामने आ कर रूकी और उसमें से तीन महानुभाव उतरे। वह जो खद्दर का कुरता और चप्पल पहने हुए हैं, उनका नाम पंडित ओंकारनाथ है। आप दैनिक-पत्र 'बिजली' के यशस्वी संपादक हैं, जिन्हें देश-चिंता ने घुला डाला है। दूसरे महाशय जो कोट-पैंट में हैं, वह हैं तो वकील, पर वकालत न चलने के कारण एक बीमा-कंपनी की दलाली करते हैं और ताल्लुकेदारों को महाजनों और बैंकों से कर्ज दिलाने में वकालत से कहीं ज्यादा कमाई करते हैं। इनका नाम है श्यामबिहारी तंखा और तीसरे सज्जन जो रेशमी अचकन और तंग पाजामा पहने हुए हैं, मिस्टर बी.मेहता, युनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं।' प्रेमचंद संकेत दे रहे हैं कि राय साहब और यही तीनों भविष्य (आजादी के बाद के) के भारत के कर्ता-धर्ता बनने वाले हैं। यह सब भी दूसरों के श्रम पर जीने वाले अनुत्पादक परजीवी हैं।

गोदान में प्रेमचंद यह बताना भी नहीं भूलते हैं कि गांव के शोषक-उत्पीड़क पंडित दातादीन, झिंगुरी सिंह और पटेश्वरी लाल सीधे राय साहब, ओंकारनाथ शुक्ल और तंखा से जुड़े हुए हैं। यहां प्रेमचंद संकेत दे रहे हैं कि इनका गठजोड़ ही आजाद भारत में देश का शासक वर्ग बनने वाला है। प्रेमचंद यह भी कहना नहीं भूलते कि इस गठजोड़ के तहत होरी, धनिया, हीरा, भोला, सिलिया आदि पिछड़े-दलित मेहनतकश वर्गो का कोई भला नहीं होने वाला है।

वर्ण-जाति व्यवस्था ही भारतीय समाज की धुरी है और वही भारतीयों के आपसी सामुदायिक, जातीय वर्गीय एवं व्यक्तिगत संबंधों को संचालित करती है। इसकी सशक्त अभिव्यक्ति ही गोदान को हिंदी पट्टी (काउ वेल्ट) का एक प्रतिनिधि उपन्यास बना देता है। ■

(सामाजिक राजनीतिक विषयों के टिप्पणीकार के रूप में मशहूर लेखक की साबित्रीबाई फुले जीवन के विविध आयाम पुस्तक चर्चित रही है।)

पत्रिका

गांधी अभय हैं पर सावरकर में भय है

अरुण कुमार त्रिपाठी

दिल्ली स्थित गांधी दर्शन और स्मृति नामक संस्थान ने अपनी पत्रिका अंतिम जन का सावरकर विशेषांक निकाला है। एक तरफ इसका चारों ओर यह कहते हुए प्रचार किया जा रहा है कि इतिहास में गांधी से कम नहीं हैं सावरकर तो दूसरी ओर तमाम गांधीवादी संगठन इस प्रयास की निंदा कर रहे हैं। पत्रिका निकालने वालों का कहना है कि आजादी के अमृत महोत्सव के मौके पर स्वाधीनता संघर्ष में सावरकर के योगदान की चर्चा करते हुए विशेषांक निकालना लाजिमी है। दूसरी ओर गांधीवादियों का कहना है कि यह गांधी की विरासत को नष्ट करने का प्रयास है।

इसलिए यह समझना बहुत जरूरी है कि मोहनदास कर्मचंद गांधी यानी महात्मा गांधी की विरासत क्या है और विनायक दामोदर सावरकर यानी स्वातंत्र्य वीर सावरकर की विरासत क्या है? साथ ही यह भी जानना जरूरी है कि आज का समाज दोनों को कैसे देखता है? आज के समाज या भारत के मध्यवर्ग की मानसिकता तेजी से गांधी विरोधी हो रही है और वह सावरकर के पक्ष में झुक रही है। इसी भावना पर सवार होकर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी नये किस्म का हिंदू तैयार कर रही है और उसके भीतर अपना जनाधार बढ़ाते हुए सत्ता पर लंबे समय तक काबिज रहने तौकी योजना बना रही है। मध्यवर्ग के तमाम लोग यह कहते हुए मिल जाएंगे कि आज अगर गांधी होते तो नाथूराम गोडसे की बजाय वे ही गांधी को गोली मार देते। वे लोग यह कहते हुए भी नहीं चूकते कि सावरकर का द्विराष्ट्र सिद्धांत ही सही था।

ऐसे में यह बता देना जरूरी है कि महात्मा गांधी अभय थे और सावरकर भय से ग्रसित। अभय का अर्थ वही नहीं होता जो स्वयं किसी से न डरे बल्कि वह होता है जो दूसरों को भी न डराये। ऐसे में गांधी न तो गोली मारने वाले से डरने वाले थे और न ही उन्हें ताकतवर राज्य से किसी

तरह का भय था। बल्कि गांधी तो अपने जीवन के आखिरी दिनों में गोली मारने वाले को ढूंढते हुए उसके पीछे-पीछे घूम रहे थे। गांधी के जीवन के आखिरी दिन तीसरी मंजिल फिल्म के उस गाने की याद दिलाते हैं कि दीवाना मुझ-सा नहीं इस अंबर के नीचे, कातिल मेरे आगे है और मैं उसके पीछे पीछे। लेकिन गांधी से भयभीत था आधुनिक राष्ट्र-राज्य। हिंसा और छल कपट पर टिकी यूरोप से आयातित यह संस्था गांधी की नैतिकता को झेल नहीं पा रही थी। गांधी ने अनशन करके न सिर्फ हिंदू मुस्लिम दंगों को शांत कराया बल्कि भारत से पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये भी दिलवाए। गांधी की इस नैतिक सनकह्न को सरकार में बैठे तमाम लोग बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। वे गांधी को बड़ा खतरा मानते थे इसलिए उनसे छुटकारा पाना चाहते थे। इसीलिए गांधी की हत्या की आशंका साफ-साफ सामने देखकर भी उसे रोकने का इंतजाम करने में ढिलाई की गई।

गांधी अपनी हत्या की आशंका स्वयं देख रहे थे और इस बात को लगभग महीने भर पहले बम फेंकने वाले मदनलाल पाहवा ने पुलिस के पूछताछ में बता भी दिया था। फिर भी गांधी ने कहा था कि मैं चाहता हूं कि जब मुझे गोली लगे तो मेरे चेहरे पर हत्यारे के प्रति किसी प्रकार की कटुता का भाव न हो और मेरे मुख से राम निकले। गांधी ने अपने पूरे राजनीतिक जीवन में न तो किसी के पीछे से वार किया और न ही स्वयं पीछे से वार झेला। उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य को चुनौती देकर और बताकर सारे आंदोलन किये और बाद में अपने सीने पर तीन गोलियां खाकर दम तोड़ा। गांधी ने अपने किसी भी अपराध से बचने की कोशिश नहीं की। वे सत्य पर डटे रहे और कभी झूठ नहीं बोला। उन्होंने जीवन में जो भी अपराध किए उसका बचाव करने की कोशिश नहीं की। इनमें उन पर 1922 में लगा राजद्रोह का आरोप है जिसे उन्होंने खुलकर स्वीकार किया, कोई बचाव नहीं किया और छह साल की सजा पाई। क्योंकि वे जानते थे कि वैसा करना जायज है। वीरता और अभय होने की यही निशानी है।

इसके ठीक विपरीत सावरकर हत्या के तीन मामलों में लिप्त होते हुए भी अपने को बचाते और झूठ बोलते रहे। पहली बार उन्होंने लंदन में अंग्रेज अधिकारी विलियम हट कर्जन वाइली की हत्या के लिए मदन लाल धींगरा को उकसाया और उन्हें फांसी पर चढ़ जाने दिया, लेकिन उसमें अपनी लिप्तता होने को स्वीकार नहीं किया। दूसरी बार उन पर लंदन के इंडिया आफिस में क्रांतिकारी समूहों में लिप्त होने और नासिक के कलेक्टर जैक्सन की हत्या की साजिश का आरोप लगा। इन अपराधों को स्वीकार करने की बजाय उन्होंने उसका असफल बचाव किया और दोहरे काले पानी की सजा यानी दोहरे आजीवन कारावास की सजा पाई। तीसरा और सबसे गंभीर आरोप महात्मा गांधी की हत्या का था।

सावरकर इस हत्या के अभियुक्त बने और उन पर लाल किले के भीतर मुकदमा चलाया गया। उन्होंने न सिर्फ गांधी की हत्या में किसी प्रकार की लिप्तता से इंकार किया बल्कि नाथूराम गोडसे जैसे अपने प्रिय शिष्य को पहचानने से इंकार कर दिया। गोपाल गोडसे के वकील पीएल इनामदार अपनी प्रसिद्ध पुस्तक द-स्टोरी आफ रेड फोर्ट ट्रायल 1948-49 में साफ लिखते हैं कि इस पूरी सुनवाई के दौरान सावरकर बेहद भयभीत थे और स्वार्थी हो चले थे। वे इनामदार से पूछते थे कि क्या वे बरी हो जाएंगे। लेकिन उन्हें किसी अन्य अभियुक्त की चिंता नहीं थी। बल्कि उन्होंने नाथूराम गोडसे को पहचानने से इंकार कर दिया। नाथूराम गोडसे जो उन्हें पूजते थे, चाहते थे कि कम-से-कम एक बार सावरकर उन्हें स्पर्श कर लें। लेकिन भयभीत सावरकर बेहद निष्ठुरता से अपने को बचाने में लगे थे। सावरकर का यह भय उस समय भी दिखा जब 1950 में नेहरू लियाकत अली का समझौता हुआ। उन्होंने वहां भी हलफनामा दिया कि वे इस मामले पर कोई राजनीतिक गतिविधि नहीं करेंगे।

सावरकर ने 1913 से 1920 तक लगातार माफीनाम लिखा और उसी के चलते 1921 में अंडमान निकोबार की सेल्यूलर जेल से छूटे, लेकिन अगले तीन साल रत्नागिरि जेल में रहे। उसके बाद 1924 में उन्हें पूरी तरह से रिहा किया गया लेकिन उनकी राजनीतिक गतिविधियां प्रतिबंधित थीं। सावरकर ने 1923 में हिंदुत्व का सिद्धांत लिखा जो कि हिंदूधर्म से एकदम अलग था। उस पर बंगाल के कैथोलिक विद्वान ब्रह्मबांधव उपाध्याय का गहरा प्रभाव था। कहते हैं रवींद्रनाथ टैगोर के गोरा, घरे बायरे और चार अध्याय जैसे उपन्यासों का नायक उसी उपाध्याय से प्रेरित है। सावरकर एक नास्तिक व्यक्ति थे और उनकी नास्तिकता बौद्ध और जैन धर्म जैसी नहीं थी। अगर गांधी गोरक्षक थे तो सावरकर ऐसी किसी मान्यता को पसंद नहीं करते थे।

वे गांधी के अनशन और चरखे को भी बुरी तरह नापसंद करते थे। वे मानते थे गांधी हिंदू समाज को अहिंसक और नामर्द बना रहे हैं जबकि आज जरूरत हिंदू समाज को हिंसक और क्रूर बनाने की है ताकि वह इतिहास में हुए मुस्लिमों के अत्याचार का बदला ले सकें। इसीलिए उन्होंने पितृभूमि को पितृभू में बदल दिया। वास्तव में सावरकर भारत में यूरोपीय तर्ज पर कथित सेक्युलर और हिंसक राज्य की स्थापना करना चाहते थे जिसकी मंजिल हिटलर और मुसोलिनी थे। यानी ऐसा राज्य जो दमन और हिंसा के माध्यम से एकताबद्ध हिंदू राष्ट्र तैयार करे जिसमें मुसलमान या तो रहें ना या फिर दोयम दर्जे के नागरिक बनकर रहें। क्योंकि उनका मानना था कि भारत में इस्लाम का समन्वय नहीं हो सकता। हालांकि सावरकर जिन्ना के प्रति एकदम कटु नहीं थे और उनकी मुस्लिम लीग के साथ सिंध और बंगाल प्रांत में मिलकर सरकारें बनाई थी।

इसके ठीक विपरीत गांधी प्रादेशिक राष्ट्रीयता के हिमायती थे जिनका मानना था कि इस भूमि पर जो कोई रह रहा है वह इसका नागरिक है और राष्ट्र का हिस्सा है। गांधी एक सनातनी हिंदू और आस्तिक व्यक्ति थे इसलिए वे धर्मों की मूलभूत एकता को समझते थे और उसे राष्ट्र के निर्माण में कोई बाधा नहीं मानते थे। क्योंकि उनका राष्ट्र दुनिया के आगे धौंस जमाने के लिए नहीं बल्कि दुनिया को नया रास्ता दिखाने और उसे अभय बनाने के लिए था। मैजिनी से प्रभावित सावरकर का अभीष्ट यूरोप था और वे चाहते थे कि बाकी दुनिया भी यूरोपीय इतिहास से गुजरे। जबकि गांधी के लिए यूरोप का अभीष्ट भी भारतीय सभ्यता थी और वे ऐसे किसी ऐतिहासिक पथ को अपनी नियति नहीं मानते थे। सावरकर राष्ट्र और उसकी व्यवस्था के निर्माण के लिए व्यग्र थे जबकि गांधी व्यक्ति निर्माण और स्वराज पाने के लिए। इसीलिए गांधी अभय थे और सावरकर भयभीत। आज का देश एक भयभीत देश बन रहा है देखना है कि समाज इसे अभय बनाएगा या भयाक्रांत करेगा। इसी से तय होगा कि हम गांधी के देश में रहेंगे या सावरकर के। ■

(अरुण कुमार त्रिपाठी समाजवादी धारा के एक प्रतिबद्ध और महत्वपूर्ण पत्रकार हैं। लम्बे समय तक दैनिक हिन्दुस्तान में काम किया। संप्रति स्वतंत्र लेखन।)

'हिन्दू भारत' और 'बौद्ध भारत'

गेल ओम्वेट

(इस स्तंभ में जोतीराव फुले, डॉ भीमराव आम्बेडकर, भगत सिंह, डॉ. राममनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव, जयप्रकाश नारायण, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मधु लिमये, किशन पटनायक और जयपाल सिंह मुंडा का लेखन पहले प्रकाशित किया जा चुका है। इस बार प्रसिद्ध चिंतक गेल आम्वेट का विचार हम साझा कर रहे हैं। अमेरिकी मूल की आम्वेट महाराष्ट्र मे शादी कीं। अभी हाल ही में वे दिवगत हुई हैं। बुद्ध, फुले आम्बेडकर पर अपनी तरह का विरल काम किया। उनका यह लेख आज के समय के लिए काफी मौजूं है : सम्पादक)

फुले तथा बाद में आम्बेडकर द्वारा भारतीय इतिहास की रचनाओं ने भारतीय राष्ट्र अथवा भारतीयजनों के इतिहास की पुनर्रचना प्रारम्भ की, जो अभिजनों के अब तक के विश्वेषणों से मुक्त थी। राष्ट्रवाद पर अभी हाल के सबसे प्रभावशाली विश्लेषण को बेनेडिक्ट एंडरसन (Benedict Anderson) की पुस्तक द इमेजिन्ड कम्युनिटी में देखा जा सकता है। पुस्तक इस बात पर केन्द्रित है कि किस अंश तक राष्ट्र के रूप में समुदाय अपने आप में रचनात्मक परिवेश है। सच बात यह है कि पूरी उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में ऊंची जाति के अभिजन राष्ट्र की रचना और उसके सम्बन्ध में कल्पना राष्ट्र के रूप में करते रहे हैं। कभी-कभी ये अभिजन प्रजातान्त्रिक परिभाषा का प्रयोग हुए अधिकांशतः एक रुमानी अन्दाज में हिन्दुओं को शुद्ध रक्त तथा जाति के व्यक्तियों के रूप में चित्रित करते रहे हैं।

हिन्दू वे लोग हैं जो इस महाद्वीप के निवासी हैं और बाहरी लोगों, मुसलमान और ब्रिटिश लोगों ने आक्रमण किया है और उनके विचार विमर्श पर अपना अधिकार कर लिया है। जबकि कांग्रेस और अन्य समाजवादी भारत की एक ऐसी एकता चाहते थे जिसमें मुसलमान और धर्मों के लोग सभी एक साथ मिलकर रहें। गांधीवादी हिन्दू धर्म को पुर्नविश्लेषित करना चाहते थे और उसमें सुधार की गुंजाइश छोड़ना चाहते थे। दोनों ही प्रकार के विचारों पर इस ढांचे के तत्त्व मौजूद थे। उन्होंने यह पहले ही स्वीकार कर लिया कि भारत की बहुसंख्यक जनसंख्या हिंदू हैं और प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराएं भी हिन्दूवादी हैं। ब्रिटिश और भारतीय दोनों के इतिहास लेखन में यह समान बात थी। पहले से ही स्वीकार कर लिया कि भारत की बहुसंख्यक जनसंख्या हिन्दू है और भारत के लेखन में यह समान बात थी। लेखन में यह स्वीकार किया गया कि प्राचीन, मध्ययुगीन तथा आधुनिक भारत हिन्दू ही है—आधुनिक भारत आवश्यक रूप में हिन्दू, मुस्लिम तथा ब्रिटिश भारत है।

फुले, आम्बेडकर, पेरियार की परम्पराएं उस प्रयास का प्रतिनिधित्व करती हैं जो गैर उत्तर भारतीय नीची जातियों के परिप्रेक्ष्य में, व्यक्तियों की एक वैकल्पिक पहचान को बनाती हैं। वे न केवल प्रभुत्वशील हिन्दुओं द्वारा शोषण की आलोचना कर रहे थे, साथ ही वे उनके द्वारा उनकी प्राचीनता तथा मुख्य भारतीय परम्पराओं पर उनके दावे को भी चुनौती दे रहे थे। हिन्दूवादी परिप्रेक्ष्य से भी कहीं अधिक तार्किकता तथा समतावादी आधार पर आम्बेडकर अभिजनों की आवश्यकताओं पर प्रश्न उठा रहे थे और उनसे मुक्ति पाने का हल ढूंढ रहे थे। यदि सम्पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप में ही सही, पूर्व पूंजीवादी समाज में जातिगत ढांचे के विश्लेषण ने प्रजातांत्रिक मूल्यों का महत्त्व जरूर सामने रखा। अतः ऐसा लगता है कि जो परम्पराएं विकसित हो रही थीं उनमें चिन्ताएं जाति की समाप्ति, औरतों की बराबरी, किसानों और मजदूरों के कल्याण की तथा तार्किक तथा वैज्ञानिक समाज रचना की थी। बड़ी प्रजातान्त्रिक क्रान्ति के सम्बन्ध में उस समय में यह सबसे अधिक व्यवस्थित अभिव्यक्ति थी। सत्यता यह है कि यदि यह कहा जाता कि आम्बेडकर दलितों की आर्थिक समस्याओं से मुक्ति पाने के विचार के स्थान पर अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग, इस परम्परा को विकसित करने के लिए कर रहे थे तो उन पर आदर्शवाद का आरोप लग जाता। क्या यह सत्य नहीं है कि हिन्दू राष्ट्रवाद (जो आज भारतीय जनता पार्टी (बीजेपी) तथा उनके सहयोगियों की गतिविधियों में देखा जा सकता है) को नीचे रखने के लिए किसी भी अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक शक्तियों द्वारा मुकाबला करने की असफलता दलितों तथा दमितों के सन्दर्भ में ऐसी परम्परा का विकसित करना तात्कालिक आवश्यकता थी।

आम्बेडकर का परिप्रेक्ष्य उस अपभ्रष्ट सामाजिक स्वरूप को अस्वीकार करने से प्रारम्भ होता है जो फुले के गैर-अर्थवादी सिद्धान्त से उपजा था, सत्यता यह है कि भारत में जाति व्यवस्था भारत की विभिन्न प्रजातियों के रक्त तथा संस्कृति के मिश्रण के बहुत बाद उभरी होंगी। यह सोचना कि जातियां प्रजातियों का विभाजन है और जितनी जातियां हैं उतनी ही प्रजातियां हैं, तथ्यों की बहुत बड़ी तोड़-मरोड़ है। पंजाब के ब्राह्मणों तथा मद्रास के ब्राह्मणों में क्या प्रजातीय समानता है? बंगाल के अस्पृश्यों तथा मद्रास के अस्पृश्यों में क्या प्रजातीय समानता है? पंजाब के ब्राह्मण तथा पंजाब के चमारों के बीच क्या प्रजातीय भिन्नताएं हैं? पंजाब के ब्राह्मण भी उसी प्रजाति के हैं जिसके पंजाब के पार हैं। मद्रास के ब्राह्मण भी उसी प्रजाति के हैं जिसके पेरियार हैं। जाति व्यवस्था प्रजातीय विभाजन पैदा नहीं करती। जाति व्यवस्था एक ही प्रकार की प्रजाति के लोगों का सामाजिक विभाजन है।

जाति व्यवस्था का ध्वंस (Annihilation of Caste) पुस्तक में उनके कथन साफ हैं। उससे अधिक साफ कहा भी नहीं जा सकता। आम्बेडकर का नाम प्रजातीय सिद्धान्त की औचित्यता के साथ जोड़ना गलत है। आम्बेडकर का जोर फुले की दृष्टि से इतिहास में आक्रमण, युद्ध और हिंसा के कारकों पर अधिक था। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं में संघर्ष जो भिन्न-भिन्न धार्मिक सांस्कृतिक मूल्यों का

गेल ओम्वेट (2 अगस्त 1941- 25 अगस्त 2021)

प्रतिनिधित्व कर रहे थे, भारतीय इतिहास में थे। इस संघर्ष में ताकत भी थी, हिंसा भी थी, राजनीतिक जोड़-तोड़ भी था और विचारधारा की धोखाधड़ी की आंशिक व्यवस्था का निर्माण तथा उसकी रचना के प्रयास भी थे।

आम्बेडकर के जीवन में उनकी रचनाएं ही प्रकाशित हुई थीं। अस्पृश्य (The Untouchables, 1948) और शूद्र कौन थे? (Who Were the Shudras?, 1955)। दोनों ही पुस्तकें सीमित उद्देश्यों के लिए थीं । लेखन की पृष्ठभूमि में एक विस्तृत तथा विशद सिद्धान्त की रचना की तैयारी थी। उनकी मृत्यु के बाद अधूरी रचनाओं के रूप में प्रकाशित हुई शूद्र कौन थे? पुस्तक वस्तुतः प्रजातीय विश्लेषण की अस्वीकारोक्ति थी। उनका मानना था कि शूद्र आर्यों में वे लोग थे जो ब्राह्मणों के साथ प्रतियोगिता में थे और समय के साथ आन्तरिक गुटबन्दी और राजनीतिक संघर्षों के कारण नीचे के स्थान पर पहुंच गए थे। बाद में पुनः सोचने के बाद यह भी जोड़ा गया कि इन शूद्रों में बाद में गैर-आर्य भी शामिल हो गए। पुस्तक के परिचय में आम्बेडकर अपने को गैर-ब्राह्मण विद्वान कहते हैं। पुस्तक अस्पृश्य प्रजातीय सिद्धान्त को विवेचित करने का प्रयास भी नहीं करती। पुस्तक का तर्क यह है कि जाति संरचना की मुख्य संरचना बनने के बहुत बाद में अस्पृश्यता प्रारम्भ हुई—जब विजित आदिवासियों या तोड़े गए व्यक्तियों को गांवों में बाहर बसने के लिए मजबूर किया गया तभी से अस्पृश्यता का प्रारम्भ हुआ। वे अस्पृश्यों को बौद्ध धर्म के साथ भी जोड़ते हैं। वे मानते हैं कि ब्राह्मणवाद तथा बौद्धवाद के पारस्परिक संघर्ष ने भी अस्पृश्यों की उत्पत्ति पर प्रभाव डाला।

सच बात पूछिए तो अम्बेडकर की प्रकाशित रचनाएं हिमनद ही मात्र एक नोक थीं। सारी रचनाओं में एक विशद सिद्धान्त के आधार छिपे हुए थे, जिन पर आम्बेडकर मृत्युपर्यन्त काम करते रहे। इस सिद्धान्त की रूपरेखा उन्होंने 'भारतीय इतिहास में क्रान्ति तथा प्रति क्रान्ति' नामक अपनी कृति में प्रस्तुत की। इस कृति में शूद्रों तथा अस्पृश्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से विवेचना की गई थी। सामाजिक उत्पत्ति के सन्दर्भ में यह व्याख्या ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विस्तृत तथा विश्लेषणात्मक थी। भारत के सामाजिक उद् विकास की प्रक्रिया में ब्राह्मणवाद तथा बौद्धवाद के बीच के संघर्ष को, सभ्यताओं का संघर्ष कहा गया।

आम्बेडकर की थीसिस के प्रश्न (किसी प्रस्तावक को बिना पहचाने) मूलतः राष्ट्रवादी मत, जिसको हिन्दूराष्ट्रवादी मत के नाम से भी जाना जा सकता है, के लिए रखे गए थे। उनका तर्क यह था कि प्राचीन काल में किसी भी प्रकार का संयुक्त हिन्दू भारत अस्तित्व में था ही नहीं। इसके बजाय, मुस्लिमों के आगमन से पहले तीन प्रकार के भारत मौजूद थे।

1. 'ब्राह्मणवाद' जो वैदिक युग के आर्यवादी समाज की चर्चा कर रहे थे और यथार्थ में यह एक बर्बर युग था।
2. 'बौद्धवाद' जिसको मगध तथा मौर्य साम्राज्यों ने क्रान्ति के रूप में स्वीकारा था तथा इस युग में एक ऐसी सभ्यता विकसित हुई थी जिसका जोर मानव एकता के मूलभूत स्वरूपों पर था।
3. 'हिन्दूवाद' या 'हिन्दू प्रतिक्रान्ति' जो पुष्य मित्र शुंग के भारत में शक्ति को प्राप्त करने से सम्बन्धित था और जिसका सम्बन्ध मनु, जाति की पराकाष्ठा तथा औरतों और शूद्रों को पराधीन करने से था।

आम्बेडकर का समय उन विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रतिनिधित्व है जो मूलभूत रूप में मानव जीवन के संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों पर केन्द्रित था और इनमें पारस्परिक मूल्यों तथा सेनाओं के बीच संघर्ष थे। जैसा कि आम्बेडकर तर्क देते हैं—यह स्पष्ट है कि इस देश में मुस्लिम ही अकेले आक्रमणकारी नहीं थे। यदि हिन्दू भारत पर मुस्लिमों ने आक्रमण किया था तो बौद्ध भारत पर ब्राह्मणों ने आक्रमण किया था।

आम्बेडकर द्वारा इतिहास की इस पहचान में प्रजातीय, नृजातीय तत्त्व दोनों ही मौजूद थे तथा कुछ सीमा तक इतिहास के नायक गैर आर्य लोग थे। उदाहरण के लिए उनका तर्क था कि मौर्य साम्राज्य नागा लोगों का था। लेकिन इसके बारे में बहुत कम कहा गया है। जैसा कि वे अपने तर्कों के बारे में सजग रहा करते थे- उन्होंने कहा कि यहां पर संघर्ष करें ।

प्राचीन भारत पर मूलभूत रूप में अलग परिप्रेक्ष्य न केवल स्थापित राजनीतिक नेताओं के सैद्धान्तिकरण से अलग था, बल्कि वामपंथियों के घिसे-पिटे तर्कों से भी अलग था। ये सभी लोग इतिहास को एक ही दृष्टि से देख रहे थे। यह दृष्टि थी कि भारतीय सभ्यता हिन्दू सभ्यता है, जिसका मूल वैदिक काल में है। बाद में इतिहास की परतें खोलने के लिए प्रयत्न हुए। एस०ए० डांगे ने इतिहास के पांच चरणीय सिद्धान्त को भारत पर प्रभावी करने का प्रयास किया। डांगे ने आदर्शात्मक रूप में वैदिक आर्यवादी समाज को पुरातन साम्यवाद की संज्ञा दी। दक्षिण के प्रसिद्ध साम्यवादी नेता ई०एम०एस० नम्बूदरीपाद ने भी जाति और गांव को भारतीय समाज में निहित स्थायी संरचना कहा। आम्बेडकर का सिद्धान्त इस बात पर जोर देता है कि सारे शोषण की जड़ और विरोधाभास जाति में है और जाति व्यवस्था के निर्माण में समय-समय पर कई क्रान्तिकारी व्यवधान आये हैं। वे जाति की भारत के लिए अनिवार्यता, अपरिहार्यता, प्रभुता तथा उसको न तोड़ पाने की क्षमता से भी इनकार करते हैं। उनकी 'क्रान्ति तथा प्रतिक्रान्ति' पुस्तक में हिन्दू विजय की व्याख्या करीब-करीब फुले तथा अन्य द्वारा आर्य विजय की व्याख्या के बराबर ही थी। आर्यों की विजय के परिणाम, सामाजिक विकास के विभिन्न पहलुओं, समूहों के पारस्परिक संघर्षों और महत्त्वपूर्ण टूट के कारण बाद में आये थे। सभ्यता में बौद्धवाद का नया मोड़ भी जो अंततः मौर्य साम्राज्य में परिवर्तित हुआ समाज भी इसी प्रकार आया था। कुछ अपूर्ण होते हुए भी, समाज के विकास को समझने के लिए इतिहास की यह नई पद्धति, काफी सहायक थी। 1940 के राजनीतिक लेखन जिसने हिन्दू पहचान को स्वीकार कर लिया था, आम्बेडकर की इस पद्धति से बिल्कुल अलग थी। ■

(स्रोतः लेखक की दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति पुस्तक से)

डॉ. शांति यादव

(अध्यापकी से अवकाश ग्रहण कर चुकीं शांति यादव मधेपुरा की निवासी हैं। धर्मसत्ता और पितृसत्ता के स्याह रूप के साथ ही अस्मितावादी विमर्श उनकी कविताओं में प्रमुखता से अभिव्यक्त हुए हैं। 'चुप रहेंगे कब तलक' और 'शहर उदास है' इनके गजल संग्रह हैं और 'वैदेही के अंतर्द्वंद्व ' प्रबंध काव्य। 'अलगनी टूट गई' और 'एक बटा तीन' इनका हालिया प्रकाशित काव्य संकलन है। शाहजहां बनाम दशरथ मांझी प्रकानाधीन पुस्तक है: सम्पादक)

हरीराम वल्द रामधुन

हरीराम मैं वल्द रामधुन,
हिन्दूपुर का वासी हूं
प्रयागराज तहसील,
प्रदेश उत्तर का एक जज्बाती हूं ।

फाफामऊ घाट प्रयाग का
अपना नया ठिकाना है
राम नाम की चादर को
वापस इस पर लौटाना है।

वोट दिया था, रामराज आये
था सपना मेरा भी
जीवन भर जिह्वा पर ठहरा
जय श्री राम का नारा भी।

छप्पर में खोंसी थी मैंने,
जो रसीद कटवाई थी
भव्य राम मंदिर की खातिर
पूंजी जमा लगाई थी ।

जब भी मिलता था आपस में,
राम-राम ही कहता था
थे राम हमारे अंतस में,
उनकी ही रौ में बहता था।

हतभाग्य मगर! जब सांस थमी,
दहशत में बजरंगी था
"राम नाम है सत्य" बोलने
साथ ना कोई संगी था।

कंधे चार न होंगे ,
मैं एक गट्ठर-सा बंध जाऊंगा
कब सोचा था बिना मुखाग्नि,
इन रेतों में धंस जाऊंगा!

राम नाम की चादर डाली
और लिया सबने मुंह फेर
सदमे में था, देखा ना था,
जीवन में ऐसा अंधेर!

किन्तु देखना शेष अभी था,
आया कोई रात गए
खींची चादर राम नाम की,
सब के सब बेपर्द हुए!

नहीं अकेला, बस्ती पूरी ,
पत्थराई थी, पड़ी रही
राम नाम पर चोरी डाका!
सभी आत्मा डरी हुई!

रामराज में राम लूटने
अर्थी तक आ जाते हैं
साहब! इतने बुरे दिनों को,
कैसे आप चलाते हैं!

हम उखड़े-बिखरे पडे. हुए,
शृंगवेश्वर घाट प्रयाग में
आत्म शुद्धि और पाप मुक्ति
अब कहां हमारे भाग में!

मैं समझ नहीं पाया अब तक,
किसने हम सब से घात किया
आया था कुंभ नहाने को,
कोरोना कैसे साथ लगा?

गिन लूंगा मैं बरस-महीने,
दिन की क्या औकात भला
रामराज में प्राण जाएं
ऐसा अवसर कब किसे मिला?

आ जाएं जब दिन अच्छे,
साहब मेरी भी सुधि लेना
मुझको मेरे राम नाम की
चादर बस लौटा देना!
मुझको मेरे राम नाम की
चादर बस लौटा देना !!

अपने 75वें जन्मदिन पर पौधारोपण करते राजद के राष्ट्रीय अध्यक्ष लालू प्रसाद।

एमआईएमआइएम के राजद में शामिल वे चार विधायक : मुहम्मद इजहार असफी (कोचाधामन), शाहनवाज आलम (जोकीहाट), सैयद रुकनुद्दीन अहमद (बायसी) और अनजार नईमी (बहादुरगंज)। स्पीकर द्वारा इन विधायकों के राजद में विलय की अधिसूचना के बाद राजद बिहार की सबसे बड़ी पार्टी हो गई। उसके विधायकों की संख्या बढ़कर 80 हो गयी। तस्वीर राजद कार्यलय की है जिसमें इन चार विधायकों के मध्य में हैं पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष श्री जगदानंद सिंह और नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव।

राजद कार्यालय में पुस्तकालय का उद्घाटन करते लालू प्रसाद

जगदानन्द सिंह, प्रदेश अध्यक्ष, राष्ट्रीय जनता दल, वीरचन्द पटेल पथ, पटना-1 द्वारा प्रकाशित एवं वितरित। संपादन : अरुण आनंद, सहयोग : कविजी

गंभीर बीमारियों से जूझते लालू जी का 75वां जन्मदिन संपन्न

पारिवारिक के सदस्यों के बीच लालू प्रसाद : जन्मदिन का केक काटते हुए।

राजद कार्यालय में लालू प्रसाद का जन्मदिन उत्सव।

इसी महीने की पहली तारीख को राजद के राष्ट्रीय अध्यक्ष लालू प्रसाद का 75वां जन्मदिन मनाया गया। पार्टी ऑफिस और उनके आवास 10 सर्कुलर रोड- दोनों जगह बिहार के विभिन्न हिस्सों से आये कार्यकताओं ने उन्हें बधाई दी। सर्व साधारण के लिए हमेशा सुलभ रहने वाले लालू जी सबों से मिले। उनकी बातें सुनी और उनका उचित आदर सत्कार किया। इस मौके पर उन्होंने पौधारोपण भी किया। वीरचंद पटेल पथ स्थित पार्टी ऑफिस में सीनियर नेताओं यथा श्री जगदानंद सिंह, रामचंद्र पूर्वे, उदय नारायण चौधरी, नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव और पार्टी नेताओं एवं कार्यकताओं की उपस्थिति में उनके जन्मदिन को यादगार बनाया गया। इस मौके पर केक काटा गया और उपस्थित लोगों को मिठाइयां खिलाई गई।

इसी माह एक बुरी खबर आई। यह लालू जी के स्वास्थ से जुड़ी थी। 2 जुलाई की रात घर में सीढ़ी चढ़ने में फिसलन के कारण असंतुलित होकर गिर जाने के कारण उनके कंधे की हड्डी टूट गई और उनके कमर में भी हेयर फ्रैक्चर आया। हार्ट, किडनी और सुगर जैसी कई व्याधियों से घिरे लालू जी के पूरे स्वास्थ पर इस घटना का प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

पहले उनका इलाज डाक्टर सुधीर कुमार की देखरेख में हुआ। जब उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ तो उन्हें पारस हास्पिटल, पटना में इमरजेंसी केयर यूनिट में भर्ती करवाया गया। दवा के ओवर डोज इस्तेमाल के कारण वहां भी उनकी स्थिति में सुधार नहीं हुआ। अंततः उन्हें एयर एम्बुलेंस से एम्स दिल्ली ले जाया गया। जहां आथोर्पेडिक सर्जन, एंडोक्रिनोलाजिस्ट, कार्डियोलॉजिस्ट और मेडीसन के डाक्टर की देख-रेख में उनका इलाज शुरू हुआ। एक-दो दिन तक वहां भी उनके स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। खबर आई कि उनका पूरा शरीर चौक कर गया है, लेकिन जल्द ही उनके स्वास्थ्य में तेजी से सुधार आया और वे जल्द ही आसीयू से जेनरल वार्ड में आ गए। पूर 19 दिन अस्पताल में भर्ती रहने के बाद अपनी बड़ी बेटी और राज्यसभा सांसद श्रीमती मीसा भारती के दिल्ली स्थित आवास पहुंच गए हैं।

इस बीच सोशल मीडिया पर उनके स्वास्थ्य को लेकर प्रतिक्रियाओं की बाढ़-सी आ गई। विभिन्न दलों के नेता कार्यकर्ताओं उनके दीघार्यु जीवन की कामना की। केंद्रीय मंत्री पशुपति कुमार पारस और नित्यानंद राय ने एम्स जाकर उनका हालचाल लिया। इसके पहले पारस में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री जीतनराम मांझी और सांसद चिराग पासवान भी उनको देखने गए। केंद्रीय मंत्री राजनाथ सिंह एवं अश्विनी कुमार चौबे ने भी उनके स्वास्थ्य की जानकारी ली। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी ने भी उनकी कुशलक्षेम ली।

बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने पारस पहुंचकर उनके स्वास्थ्य का जायजा लिया। सोशल मीडिया पर उनके स्वस्थ होने को लेकर लोगों के द्वारा पूजा अर्चना के साथ ही संगीतकारों द्वारा उनके स्वास्थ्य सुधार के निमित्त पूजा अर्चना से भरे गीत-संगीत के वीडियो वायरल होते रहे। ये घटनाएं लालू जी की लोकप्रियता को इंगित करती हैं। उनके प्रति मास में इस तरह की व्यापक आस्था उनकी सामाजिक राजनीतिक प्रतिबद्धता को दशार्ता है। राजद परिवार इन तमाम शुभेच्छुओं का आभार प्रकट करता है।

लालू जी इकलौते ऐसे नेता हैं जिन्होंने लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा और बिहार विधान परिषद सदस्य के रूप में इस देश की संसदीय राजनीति को जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप लाने का अनथक प्रयत्न जारी रखा। भाजपा जैसी सांप्रदायिक जहर घोलने वाली पार्टी के साथ कभी समझौता नहीं करने के कारण उन्हें लगातार टार्चर किया गया, लेकिन उन्होंने कभी घुटने नहीं टेके। बिहार के मुख्यमंत्री और यूपीए सरकार में रेलमंत्री के रूप में उनकी बेशुमार उपलब्धियों को यह देश शायद ही कभी भूला पाये। ■

राष्ट्रीय जनता दल कार्यालय, बिहार द्वारा आदेशित तथा यूनाईटेड प्रिंटर्स एण्ड सर्विस प्रोभाइडर, सन्दलपुर, पटना द्वारा मुद्रित, मो.-8434977434